गङ्गानाथझापरिसरमूलग्रन्थमाला-५७

विष्णुभक्तिकल्पलता

सम्पादकः
रामचन्द्रः



राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
गङ्गानाथझापरिसरः
(गङ्गानाथझा-अनुसन्धानसंस्थानम्)
प्रयागः
२०११

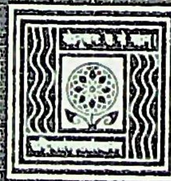
श्रीपुरुषोत्तमकविप्रणीता

विष्णुभक्तिकल्पलता

श्रीमहीधरविरचितया टीकया समेता

सम्पादकः

श्री रामचन्द्रः



गङ्गानाथझापरिसरः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानितविश्वविद्यालयः)
आजादोद्यानम्, प्रयागः-211 002

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनः
मानितविश्वविद्यालयः

गङ्गानाथझापरिसरमूलग्रन्थमाला
प्रसूनम् – 57
प्रधानसम्पादकः
डॉ. प्रकाशपाण्डेयः

श्रीपुरुषोत्तमकविप्रणीता

विष्णुभक्तिकल्पलता

श्रीमहीधरविरचितया टीकया समेता

सम्पादकः
श्री रामचन्द्रः

गङ्गानाथझापरिसरः
(राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्)
प्रयागः-2
2011

Rashtriya Sanskrit Sansthanam
Deemed University
Under the auspices of the ministry of Human Resources Development,
Govt. of India

Ganganatha Jha Campus
Text Series
No. 57
General Editor
Dr. Prakash Pandey

Viṣṇubhaktikalpalatā

by Purusottam
with commentary of Mahidhar

Edited by
Shri Ramchandra

Ganganatha Jha Campus
Rashtriya Sanskrit Sansthan
Allahabad - 2

2011

श्रीपुरुषोत्तमकविप्रणीता

विष्णुभक्तिकल्पलता

श्रीमहीधरविरचितया टीकया समेता

सम्पादकः

श्री रामचन्द्रः



गङ्गानाथझापरिसरः

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानितविश्वविद्यालयः)

आजादोद्यानम्, प्रयागः-211 002

प्रकाशकः

प्राचार्यः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानित-विश्वविद्यालयः)
गङ्गानाथझा-परिसरः,
इलाहाबादः -2

प्रथमं संस्करणम्

प्रकाशनवर्षम् - 2011

मूल्यम् :

978-93-83135-93-6

मुद्रणम्
एकेडमी प्रेस
दारागंज, प्रयागः

आमुख

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशम्। विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्।

युगप्रभाव के कारण ज्ञान, योग, तप, यज्ञ आदि आजकल बहुत ही कठिन हो गए हैं। इसके लिए उपयुक्त सहायक सामग्रियों का सङ्ग्रह भी कठिन और अत्यन्त व्ययसाध्य हो गया है। लेकिन भक्ति आज भी सुगम है जो आत्मोद्धार का सर्वोत्तम साधन है। जिसमें सभी का अधिकार है। इसीलिए आज भी संसार में धर्म को मानने वाले जितने भी लोग हैं उसमें अधिकांश ईश्वर-भक्ति को ही पसन्द करते हैं। ईश्वर-भक्ति में दो शब्द हैं। प्रथम ईश्वर और द्वितीय भक्ति।

ईश्वर-इस ग्रन्थ के प्रसङ्ग में ईश्वर वह है जो सबका शासन करने वाला है। सर्वज्ञ है। सर्व-शक्तिमान् है। सर्वान्तर्यामी है। न्याय और सदाचार जिनका सिद्धान्त है। सबों को शिक्षा, बुद्धि और ज्ञान देने वाला है। जो त्रिगुणातीत होते हुए भी लीला मात्र से गुणों का भोक्ता है। जिनकी भक्ति से जीव समस्त दुर्गुणों, दुराचारों और दुःखों से मुक्ति पाकर परम पवित्र बन जाता है। जो अव्यक्त हैं लेकिन सकल चराचर जीवों के कल्याण, अधर्म का नाश, धर्म का प्रचार और भक्तों को आश्रय देने के लिए अपनी लीला से समय-समय पर देव, मनुष्य आदि के रूप में प्रत्यक्ष प्रकट होकर भक्तजनों को उनके इच्छानुसार दर्शन देकर आह्लादित करते हैं। जैसे सत्ययुग में श्री हरि के रूप में, त्रेता में श्रीराम के रूप में द्वापर में श्री कृष्ण के रूप में, आदि..... आदि.....।

भक्ति- महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात् ईश्वर में परम प्रेम (अनुराग) भक्ति है। नारद भक्तिसूत्र में भी 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च' कहा है। वैयाकरण भी भज् सेवायाम् से भक्ति शब्द निष्पन्न करते हैं। प्रेम भक्ति की पराकाष्ठा होती है। जिसका आधार सेवा भाव है। इसलिए वैयाकरणों का भी यही मत है ऐसा मानना चाहिए। ईश्वर भक्ति में सभी जीवों का समान अधिकार है। यह न्यायसंगत भी है। उदाहरण के रूप में हनुमान, जाम्बवन्त, गजेन्द्र, गरुड़, काकभुशुण्डि, जटायु आदि के प्रसङ्गों का स्मरण किया जा सकता है। ईश्वर भक्ति में विद्या, धन, जाति, बल आदि का प्राधान्य तो नहीं ही है सदाचार और सद्गुण भी अपरिहार्य योग्यता नहीं है। क्योंकि- व्याध का कौन सा अच्छा आचरण था? ध्रुव की आयु ही क्या थी? गजेन्द्र के पास कौन सी विद्या थी? विदुर की कौन उत्तम जाति थी? यादवेन्द्र उग्रसेन का क्या पौरुष था? कुब्जा का कौन सा सुन्दर रूप था? या सुदामा के पास कौन सा धन था?

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरूग्रस्य किं पौरुषम्।

कुब्जायाः कमनीयरूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनं
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः।।

ऐसा मानना है कि भक्ति के प्रभाव से भक्त में सदाचार और सद्‌गुण स्वतः ही आ जाते हैं। इसलिए इसकी कोई पूर्व योग्यता नहीं होती है।

भक्ति के प्रधान दो भेद माने जाते हैं। एक साधनरूप और दूसरा साध्यरूप। साधनरूप में नवधा भक्ति का स्थान आता है और साध्यरूप में प्रेमाप्रेमलक्षणा का।

नवधा भक्ति के विषय में श्रीमद्भागवत् में भक्त प्रह्लाद का वचन है–

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।। (श्रीमद्भागवतम् १, ९, २३)

रामचरितमानस में भगवान् श्री राम ने भी शबरी के प्रति नवधा भक्ति की बात कुछ इस प्रकार कही है।

यथा–

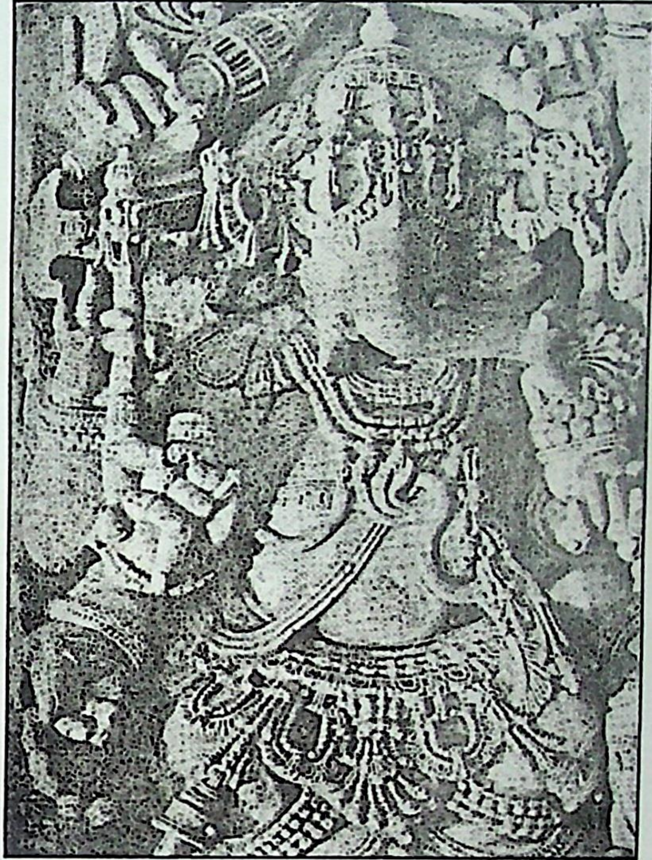
प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकाशा।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरन्तर सज्जन धरमा।।
सातवँ सममोहि मय जग देखा। मोते सन्त अधिक करि लेखा।।
आठवँ जथा लाभ सन्तोषा। सपनेहुँ नहि देखई परदोषा।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरस न दीना।।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार तो अनन्य भाव से भगवान् के स्वरूप में स्थिर होकर भगवान् की आज्ञा मानकर भगवान् के लिए मन, वाणी और शरीर से स्ववर्णानुसार समस्त कर्मों का आचरण करना भी भक्ति है। इससे भी परमसिद्ध मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

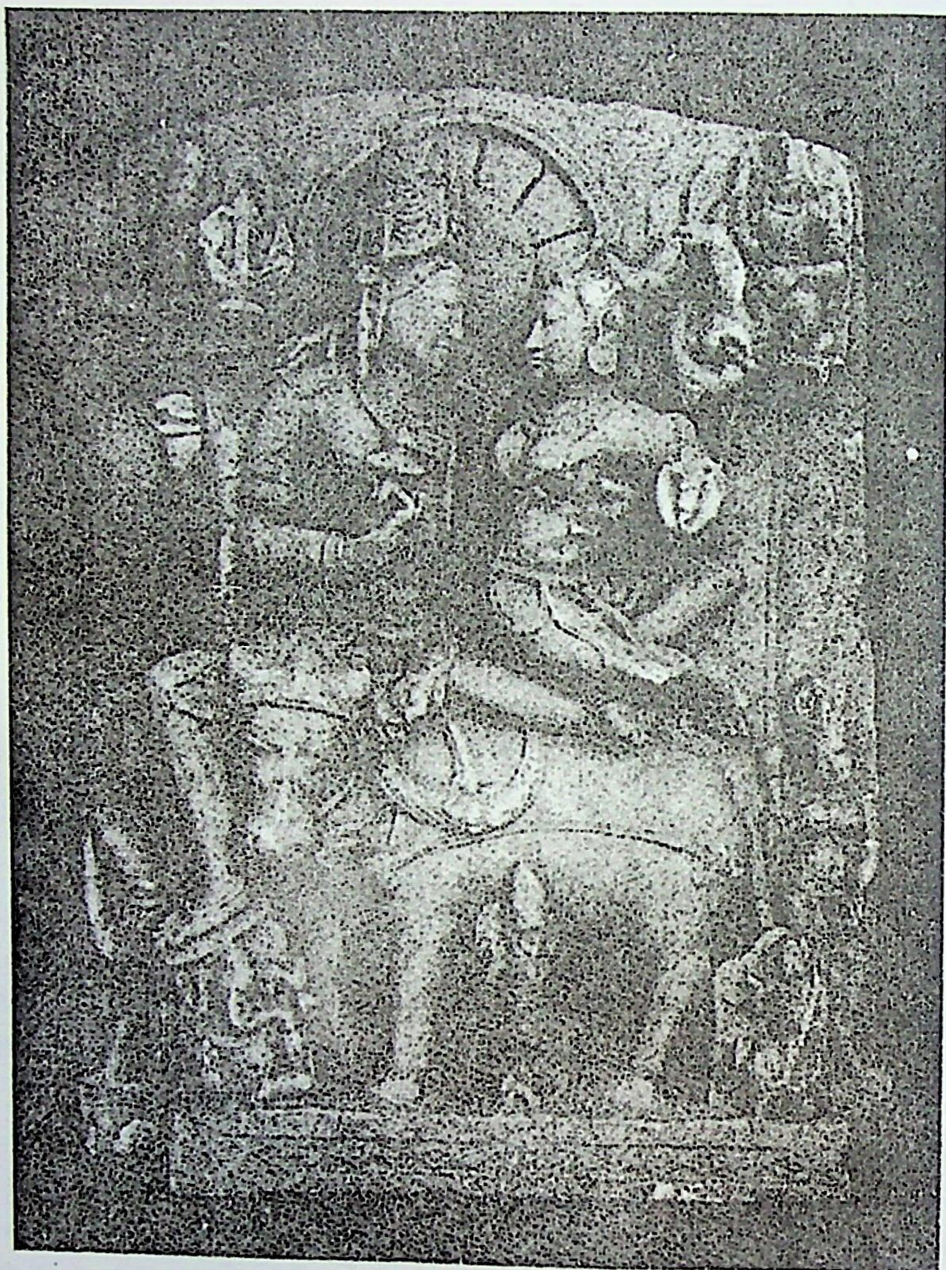
यतः प्रभृतिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।। (श्रीमद्भगवद्गीता १८, ४६)

इसको चरितार्थ करते हुए इस परिसर के वरिष्ठ अनुसन्धान सहायक श्री रामचन्द्र जी ने विष्णु भक्ति कल्पलता नामक ग्रन्थ का सम्पादन पूर्ण मनोयोग से सम्पन्न किया है। यह ग्रन्थ भी भक्तों के लिए एक पाथेय सिद्ध होगा। इसलिए वे साधुवाद के पात्र हैं। उनका यह ग्रन्थ और वे स्वयं यशस्वी हों ये मेरी शुभकामनाएँ हैं।

प्रो० सर्वनारायण झा
प्राचार्य (का०)



Halebid: Gaṇeśa Hoyasalesvara Temple
12th,13th, century-A.D.



गौरीगिरीशौ

दशमशताब्द्यां निर्मिता, हिङ्गलाजगढ़तः, (मन्दसोर, म०प्र०) प्राप्ता, इदानीम्
इन्दौरसंग्रहालये संरक्षिता, जगत्पित्रोः प्रस्तरप्रतिमा
(सौजन्यम् - अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डियन् स्टडीज़, वाराणसी)

अनुक्रमणिका

भूमिका

भारत के इतिहास में प्रेम मूलक भक्ति-आन्दोलन द्वारा जन-जीवन-समुद्र का अपूर्व मन्थन हुआ है। विदेशियों द्वारा आक्रमण करने से ऐसा लगा कि यह दुर्दान्त शक्ति भारत-वर्ष की उत्कृष्टतम उपलब्धियों को कहीं कुचलकर तो नहीं रख देगी, किन्तु उस समय वैष्णव-धर्म ने ही विदेशी आक्रमण के तूफान के आगे खड़े रहने की शक्ति प्रदान की। उस समय जैन, बौद्ध, शाक्त, तथा सात्त्वत आदि अनेक मतों द्वारा निरूपित विरक्ति तथा भोग की अतिवादिताओं एवं अतिरञ्जनाओं का अतिक्रमण कर वैष्णव साध ना ने एक नया प्रकाश दिया।

भक्ति द्वारा विकसित जीवन-दृष्टि प्रवृत्तियों के हनन के स्थान पर मनुष्य की विराट् एकता जिजीविषा का पूरी ईमानदारी के साथ सम्मान करती है। सच पूछा जाय तो मानव कमजोरियों का भी अपना सत्य है। उस पूर्ण साहस के साथ स्वीकार करके ही, मनुष्य अपनी सम्पूर्णता और सार्थकता का परिचय दे सकता है। उनको दबाने से मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है।

यदि संस्कृति के भीतर आध्यात्मिकता की भव्य भावनायें हिलोरे मारती रहती हैं तो उस देश और उस जाति का साहित्य भी आध्यात्मिकता से अनुप्राणित हुए बिना नहीं रह सकता। यदि संस्कृत के काव्यों में संस्कृति अपनी अनुपम गाथा सुनाती है, तो संस्कृत के नाटकों में वह अपनी कमनीय क्रीड़ा दिखलाती है। भारतीय संस्कृति का प्राण आध्यात्मिक भावना है। त्याग से अनुप्राणित तपस्या से पोषित तथा तपोवन में संवर्धित भारतीय संस्कृति का रमणीय आध्यात्मिक रूप संस्कृत भाषा के ग्रन्थों में अपनी सुन्दर झाँकी दिखलाता हुआ सहृदयों को बरबस खींचता है। महर्षि बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, बाण तथा दण्डी आदि पाठकों की हृदय कली को विकसित करने वाले मनोरम कांव्य की रचना के कारण जितने मान्य हैं, उतने ही वे भारतीय-संस्कृति के विशुद्ध रूप को चित्रण करने के कारण भी आदरणीय है।

मुगलकालीन वैभव को चुनौती देने वाले भक्ति और उपासना के विधि-विधान बड़े-बड़े नरपतियों के लिए भी आकाखा की वस्तु बन गये। इस भक्ति-आन्दोलन को जनान्दोलन में परिणत करने तथा भक्ति-धारा को एक अतलस्पर्शी महासागर के रूप में बदल देने के बहुमुखी हेतुओं में श्री चैतन्य महाप्रभु और तदनुयायी षड्गोस्वामियों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। डॉ० मुंशीराम की पुस्तक 'भक्ति का विकास' में भक्ति सिद्धान्त पर व्यवस्थित विचार देखने को मिलते है। डॉ० वाटवे ने 'रस विमर्श' नामक मराठी ग्रन्थ में भक्ति की रसरूपता पर साहित्य-शास्त्र और मानव-शास्त्र दोनों दृष्टियों

से विचार किया है। डॉ० शशिभूषणदास गुप्त की 'राधा का क्रम विकास' एवं श्री बलदेव उपाध्याय की 'भारतीय वाङ्मय में राधा' पुस्तक राधा के विकास एवं स्वरूप पर पर्याप्त सूचनाएं देती है। श्री बलदेव उपाध्याय की 'भागवत सम्प्रदाय' नामक पुस्तक भी बैष्णव सम्प्रदायों का परिचय प्राप्त करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में 'माधुर्य-भक्ति' डॉ. रूपनारायण पाण्डेय, 'भक्ति-साहित्य' में मधुरोपासना श्री परशुराम चतुर्वेदी, 'मराठी-साहित्य में मधुर-भक्ति' डॉ. प्रह्लाद नरहरि जोशी, 'मधुर-रस-स्वरूप और विश्लेषण' डॉ. रामसर्वार्थ चौधरी आदि पुस्तकों में मधुर-भक्ति के स्वरूप का विस्तार से परिचय मिलता है।

अभिनवगुप्त आदि की मान्यताओं से वैष्णव-दर्शन की मान्यताएं विविध दृष्टियों से भिन्न है।, अतः 'भक्ति-रस-निष्पत्ति' में साहित्य शास्त्रीय मान्यताओं को अपने प्रचलित रूप में ही ग्रहण नहीं किया जा सकता है। फलतः भक्ति-रस की मान्यता में बाधक तर्कों पर भी सूक्ष्म एवं विशद विचार करते हुए यह स्थापना की गई है कि भक्ति में स्वतंत्र-रस-सिद्धि के सभी तत्व विद्यमान है तथा रसास्वादन कराने की अप्रतिम क्षमता है। अतः उसे 'भावमात्र' कहना असंगत है। भक्ति-रस भगवान के प्रति भक्त के राग की उत्कृष्टतम परिणति है।

भक्ति-रहित ज्ञान-योग निष्फल होता है। कर्म तो भक्ति और ज्ञान सामुख्य का केवल द्वार स्वरूप है। साक्षात् भगवत् सामुख्य मुख्य अभिधेय होते हुए भी प्रायः सर्वत्र साधक में भगवत्-कथा में ही रूचि उदय हुआ करती है। भगवत्-कथा में रूचि होने पर क्रमशः अपने आप भगवत्-स्मरण तथा सामुख्य सिद्ध हुआ करता है। मन्द भाग्य जीव के पक्ष में भगवत्-कथा में रूचि उदय होने का माध्यम बतलाया गया है। भगवत्कथा भगवत्भक्तों के श्रीमुख से सुनी जाए, तभी वह शीघ्र कार्यकारिणी होती है।

भक्ति किसकी की जाए, क्यों की जाए, किसको करनी चाहिए तथा भक्ति किसे कहते है- इन समस्त विषयों का विश्लेषण करते हुए भक्ति के स्वरूप वर्णन प्रसङ्ग में अरोपसिद्धा, सङ्गसिद्धा तथा स्वरूपसिद्धा भक्ति की तीन भेद बतलाए गये हैं।

भक्ति का विकासः-

'भक्ति' शब्द संस्कृत की भज् धातु से बना है, जिसका अर्थ है- (भज् सेवायाम्) सेवा करना। इसी सन्दर्भ में बहुतायत से प्रयुक्त होने वाला एक और शब्द 'पूजा' है। यह भी संस्कृत की पूज् धातु से बना है, जिसका अर्थ है पूजा करना। दोनों शब्दों का अर्थ (भज्-सेवायाम्, पूज्- सेवायाम्) सेवा करना है।[१]

१. आशु भक्ता भवन्त्येव, परमेश्वरसेवया।
भज इत्येष धातुर्वै, सेवायां परिकीर्तितः।।१९।।
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता, भक्तिशब्देन भूयसी।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं, पशूनबद्धवा महेश्वरः ।। २०।।

इस्लामपन्थ में लोग 'इबादत' शब्द का प्रयोग करते हैं। अबद शब्द से बने इबादत का अर्थ है गुलाम या सेवक। जो सेवा करे, वह सेवक। इस प्रकार भक्ति, पूजा या इबादत पर्यायवाची कहे जा सकते हैं। भक्त भगवत्प्राप्ति की इच्छा करता है। उसे मोक्ष नहीं चाहिए, अन्य कोई सुख नही चाहिए। अब प्रश्न उठता है कि इस भक्ति में ऐसा क्या है कि भक्त रिद्धि, सिद्धि, मोक्ष सभी को ठुकरा देता है।

विश्व की तो बात क्या भारत में ही इतने मत-मतान्तर है, इतने धर्म और सम्प्रदाय पाये जाते है कि गिनती कर पाना असम्भव है। हरेक मत धर्म या सम्प्रदाय के अलग-अलग आराध्य देव हैं, अलग-अलग पूजा पद्धतियाँ हैं। यदि इनकी जाँच-पड़ताल के पचड़े में पड़ गए तो निर्णय कर पाना ही मुश्किल हो जाएगा, परन्तु इन मत-मतान्तरों के गहन अध्ययन के बाद एक बात पर पहुँच पाना अत्यन्त आसान है, वह यह कि वे सभी धर्म, सम्प्रदाय एक सर्वोपरि शक्ति में विश्वास करते हैं। उस शक्ति को चाहे जो नाम दे इससे हमें कोई बहस नही है, किन्तु सभी धर्म, सम्प्रदाय एक शक्ति का अस्तित्व अवश्य स्वीकार करते हैं।

इसके विपरीत अत्याधुनिक विचारकों में एक वर्ग ऐसा भी है जो किसी ऐसी सत्ता में विश्वास नहीं करता। वे इस प्रकार की किसी शक्ति के अस्तित्व की न आवश्यकता समझते हैं और न सम्भावना। इस वर्ग में मुख्य स्थान साम्यवादियों का है। वे ऐसी किसी सत्ता के अस्तित्व को नकारते हैं। अतएव सम्पूर्ण विश्व का मनुष्य दो वर्गों में विभाजित हो गया। आस्तिक और नास्तिक।[१] हालांकि नास्तिक विचारधारा के लोग आस्तिक विचारधारा की तुलना में कम ही हैं।

इस प्रकार भगवान के आनन्दपद प्रेम में लीन आस्तिक (भक्त) को सांसारिक सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्ति मिल जाती है। गीता, भागवत् और पुराण सभी का एक मात्र लक्ष्य उसी परमानन्द की प्राप्ति है। इस भाव का प्रतिपादन समस्त पुराणों और भागवत में उपलब्ध होता है। वे व्रज-बालाएँ जो अपना घर-द्वार, पति-पुत्र सब कुछ त्याग कर कृष्ण के प्रेम में मतवाली हो उनकी बंसी की धुन सुनते ही आत्मविभोर हो उठती

-मोचयत्येव तान्सद्यः, शंकरः परमेश्वरः।
भजनं भक्तिरित्युक्ता वाङ्मनः कार्यकर्मभिः।।२२।।
सर्वकार्येण हेतुत्वात्पाशच्छेदपटीयसी।
सत्यः सर्वग इत्यादि, शिवस्य गुणचिन्तना।।२३।।
रूपोपादानचिन्ता च मानसं भजनं विदुः।
वाचिकं भजनं धीराः प्रणवादिजपं विदुः।।२४।।
कायिकः भजनं सद्भिः प्राणायामादि कथ्यते।
धर्माधर्ममयैः पाशैर्बन्धनं देहिनामिदम्।।२५।।
-लिङ्गपुराण उत्तरार्द्ध, अध्याय-९ श्लोक-१९, २०, २२, २३, २४, २५

१. नारदीय एवं शाण्डिल्य भक्ति सूत्रों का तुलनात्मक अध्ययन-पृ.-१

थी। मीराबाई ने तो भगवान् श्रीकृष्ण को अपना सब कुछ मान लिया था। मीराबाई ने स्वयं कहा है ''मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई''। कान्ताभाव की भक्ति का यही स्वरूप है कि जहाँ स्वत्व समाप्त हो जाए, केवल इसी भावना का बोध रह जाए कि मैं उनकी हूँ और वह मेरे हैं और जो सब कुछ भी मेरा है सब उनका है। कृष्ण के विरह में समस्त मधुबन ही रोता हुआ प्रतीत होता है।

भक्ति का अर्थ होता है सेवा करना, समर्पण भाव अर्थात् अपने को समर्पित करना। भक्ति चाहे भगवत्भक्ति हो, देश-भक्ति हो, प्रेम भक्ति हो या पितृ-भक्ति। प्रत्येक भक्ति में अपने को समर्पित करना ही सच्ची भक्ति कहलाएगी। हमारे दशे में अनेक ऐसे भक्त हुए है जो अपनी भक्ति से सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने भगवान राम के प्रति समर्पित हुए। महात्मा सूरदास ने भगवान श्रीकृष्ण को आराध्य देव स्वीकार कर सच्ची भक्ति दिखलायी। सन्त शिरोमणि रैदास ने अपनी भक्ति के बल पर कठवत में गंगा जी को प्रकट कर दिया। इस सन्दर्भ में एक उक्ति प्रचलित है-''मन चंगा तो कठवत में गंगा''। देश-भक्ति में चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह जैसे अनेक वीर जवान देश के प्रति समर्पित होकर शहीद हुए तथा अमरत्व को प्राप्त किया। प्रेम-भाव (भक्ति) में मीराबाई ने श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित होकर उन्हें अपना सर्वस्य मान लिया। मीराबाई ने अपने पद्य में स्वयं कहा- ''मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई''। पितृ-भक्ति में श्रवण कुमार का नाम अद्वितीय है। पितृ-भक्ति के प्रति समर्पित होकर उन्होंने अपने माता-पिता को पैदल ही सभी तीर्थों का दर्शन कराया।

इस प्रकार भक्ति मार्ग में भगवान की उपासना ही निदिध्यासन या भक्ति है। ध्यान के द्वारा साधक भक्ति-मार्ग में अग्रसर होता है, उसी से प्रभु प्रसन्न होते हैं। इनका प्रसाद ही मोक्ष का श्रेष्ठ द्वार है। भक्ति का पूर्णरूप प्रपत्ति या शरणागति है। प्रपत्ति के द्वारा ज्ञान और कर्म भी मोक्ष प्राप्ति में सहायक होते है।

वैदिक भक्तिः-

भारतीय लोगों को क्या पाश्चात्य विद्वानों का भी ऐसा मत है कि सभ्यता का उदय मध्य एशिया में हुआ था। उन सभ्य मनुष्यों में आर्यो का महत्त्वपूर्ण स्थान था। दुनिया की लाइब्रेरी की प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद यह भी एक सर्वमान्य तथ्य है। वेद आर्यो की धार्मिक पुस्तक है। ये चार है-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद।

वेदों में जहाँ अन्य विषयों की चर्चा मिलती है, वहाँ ईश्वर, जीव और प्रकृति उपासना व मुक्ति आदि विषयों की विस्तार से चर्चा की गई है। वेद में ज्ञान, कर्म एवं उपासना इन तीनों मार्गो का निर्देश किया गया है। मानव का अभीष्ट (ईश्वर) इसी मार्ग द्वारा मिलना सम्भव है। ज्ञान का सम्बन्ध बुद्धि उपासना, श्रद्धा तथा विश्वास पर अवलम्बित है। कर्म करने के लिए ज्ञान और उपासना, बुद्धि एवं श्रद्धा तथा विश्वास की आवश्यकता है। बिना जाने या बिना विचार किए गए कार्य

कर्म नहीं कहलाते, वे गति कहलाते हैं। किए गए कार्यों में रुचि या श्रद्धा होने से सोने में सुहागे का कार्य हो जाता है। ज्ञानार्जन के लिए किसी वस्तु को जानने के लिए कर्म और उपासना की आवश्यकता होती है। उपासना अर्थात् रुचि या श्रद्धा। उपासना के लिए ज्ञान और कर्म अपेक्षित है। उपासना या श्रद्धापूर्वक भक्ति के क्षेत्र में स्तुति या प्रार्थना आते हैं। स्तुति में प्रभु के गुणों का ज्ञान होता है। जब तक गुणों का ज्ञान न हो, श्रद्धा उत्पन्न हो ही नहीं सकती ।

इस प्रकार ज्ञान हमें लक्ष्य को बताता है। कर्म हमें वहाँ तक ले जाता है और उपासना लक्ष्य के समीप आसीन कर देती है। इस प्रकार भक्ति के अंगों (स्तुति-प्रार्थना और उपासना) वेद द्वारा प्रतिपादित ज्ञान कर्म और उपासना का रूप धारण कर लेती है। ज्ञान पूर्वक सतत् प्रयत्न (कर्म) का फल उपासना है।

उपासना का अर्थ है कि हम उनके निकट आते हैं। 'उप' अर्थात् नजदीक 'आसन' अर्थात् बैठना ''ॅम ेपज दमंत हवकष्‌ हम परमात्मा के करीब बैठते हैं। ज्व ेपज दमंत ए ज्व इंपकम इल दंक जव तमेपकम पद यह तीन अर्थ उपासना के है।[1]

भक्ति एक त्रिकोण बनाती है, भक्ति करने वाली जीवात्मा जिसकी भक्ति की जाती है वह परमात्मा तथा भक्ति के साधन व प्रकार है।

ब्राह्मणग्रन्थों में भक्तिः-

वेदों के बाद हमारे धार्मिक ग्रन्थों में ब्राह्मण-ग्रन्थों व उपनिषदों का प्रमुख स्थान है। प्रत्येक वेद का पोषक या समर्थक एक-एक ब्राह्मण ग्रन्थ है। ऋग्वेद में दिव्य शक्तियों की स्तुति की गई है। इन दिव्य शक्तियों में सबसे ऊँचा स्थान विष्णु का है। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों का विवरण है। वे सब इस परमतत्त्व की ओर संकेत करते हैं तथा उसी की व्याख्या करते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ द्वारा परमतत्त्व को ईश्वर की प्राप्ति का साधन बतलाया गया है। यजमान यज्ञ करता है, यज्ञ में आहूतियाँ डालता है और आहूतियों द्वारा दिव्य शक्तियों का आह्वान करता है। यह आह्वान भक्त को दिव्यता की ओर ले जाता है और भक्ति भी मनुष्य को दिव्यता की ओर ले जाती है। तो इससे यह सिद्ध है कि ऐतरेय यज्ञ भक्ति के विरोधी नहीं है।

इस प्रकार साररूप में शतपथ ब्राह्मण भक्ति के कुछ अंगो का वर्णन एवं याज्ञिक कर्मों का वर्णन करता है। आर्षेय ब्राह्मण प्रणव, ओंकार तथा उद्गीथ की स्तुति का वर्णन तथा गोपथ में सामवेद के विचारो की पुष्टि की गई है।

---

१. ईश्वर की पूजा का वैदिक स्वरूप व्याख्या
का एक उद्धृत अंश पृ-९२

औपनिषद भक्तिः-

वैदिक साहित्य में वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों के अतिरिक्त उपनिषद् भी आते हैं। उपनिषद् भी भगवान् की उपलब्धि का उपदेश देते हैं। इनकी संख्या १०८ मानी जाती है, किन्तु प्रामाणिक उपनिषद् ११ हैं। इन ग्रन्थों में ऋषियों का आध्यात्मिक अनुभव वर्णित है। इनमें यज्ञादि कर्मो का वर्णन नहीं है। यह अत्यन्त सरल भाषा में लिखे गए ऋषियों की अपनी प्रतिभा से जिस सत्य की खोज की गयी उसी का वर्णन इन ग्रन्थों में है।

आत्मा के बारे में लिखा है कि वह अनन्त, शाश्वत, सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्द स्वरूप है। जिसने आत्मा को नही जाना उनके भक्ति या उपासना के सभी प्रयत्न व्यर्थ हैं। उस अनादि अनन्त आत्मा को जानने के उपायों का वर्णन करते हुए भक्ति की महत्ता को सभी ने स्वीकारा है। योग एक कठिन व कष्ट-साध्य मार्ग है, ज्ञान का मार्ग रूखा और सब लोगों की पहुँच के परे है। किन्तु भक्ति मार्ग सब की पहुँच में है, भक्ति मार्ग ही सबसे सरल मार्ग बतलाया गया है। भक्त अपने इष्ट देव की आराधना में अपना सर्वस्व निछावर कर देता है। अपनी उसकी कोई इच्छा नही रह जाती। वह आनन्द विभोर हो उठता है। प्रभु निश्चय ही रसरूप है। भक्त इन्हीं रसरूप प्रभु को पाकर आनन्दपूर्ण हो जाता है। छान्दोग्योपनिषद्, बृहदारण्यक, उपनिषद्, कठोपनिषद् इन सब में आत्मा के साक्षात्कार का केवल एक ही मार्ग सुझाया गया है, वह है भक्ति।

ईश्वर की प्राप्ति में भक्ति से पूर्व एक चरण और है, जिसे ज्ञान कहा जाता है। अर्थात् उस अपूर्व सत्ता का ज्ञान भी तो होना चाहिए जिससे कि भक्ति का उदय हो। यह ज्ञान गुरू के बिना असम्भव है, भक्ति के मार्ग अनेक है। साधारण मार्ग जानने के लिए भी मार्ग-दर्शक ही आवश्यकता पड़ जाती है।

भक्ति के अन्य अंगो में स्वाध्याय एवं तपादि का भी स्थान है, जिसकी चर्चा उपनिषदों में मिलती है। (मण्डकोपनिषद्) वैष्णव-सम्प्रदाय व उपनिषद्कारों की विचारधारा में यहाँ वैषम्य मिलता है। उपनिषदों ने ज्ञान, तप व त्याग को भक्ति का साधन माना है, जबकि वैष्णव सम्प्रदाय के लोग उन्हें भक्ति के अंगो में गिनते हैं।

दार्शनिक सम्प्रदायों में भक्ति की स्वीकृतिः-

भारतीय दर्शनों का लक्ष्य आत्म दर्शन है। सभी दर्शन हमें आत्म-दर्शन के लिए उपाय दिखाते हैं। यही बात श्रुतियों में भी कही गयी है।[१]

---

१. आत्मा वा रे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निधिध्यासितव्यश्च।

यह सभी जानते हैं कि दर्शन ज्ञान की एक विशेष अवस्था है। इसी बात को भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है।[1]

परमत्व आत्मा या भगवान के दर्शन-साक्षात्कार के लिए भक्ति का स्थान बहुत ऊँचा है। नारदपञ्चरात्र में मुक्ति से अधिक महत्व भक्ति को दिया गया है।[2] न केवल प्रभु दर्शन के लिए ही भक्ति की आवश्यकता है अपितु किसी भी वस्तु के प्रति जब तक अनन्य भक्ति नही होगी तब तक उसका पूर्ण ज्ञान कभी नहीं हो सकता। इसलिए प्रत्येक दर्शन में निदिध्यासन को आवश्यक माना गया है। पञ्चरात्र में नारद जी कहते हैं कि वेद के कहे हुए यज्ञ और शुभ कर्म भक्ति रहित पुरूष को पवित्र नहीं करते। जैसे सुरा से पूर्ण घट को गंगा जी शुद्ध नहीं करती हैं।[3]

साधारणतया ईश्वर प्राप्ति के दो मार्ग बतलाए गए हैं। ज्ञान-मार्ग व भक्ति-मार्ग। रामानुज, मध्व, वल्लभ, निम्बार्क चैतन्यादि द्वारा प्रचारित दर्शन तो भक्ति प्रधान ही है। परन्तु न्यायादि ग्रन्थ ज्ञान मार्ग को प्रमुखता दी है। श्रुतियाँ तो दोनों ही मार्गों का अनुमोदन करती हैं।[4]

वस्तुतः ज्ञान प्राप्ति के लिए आत्मसमर्पण की आवश्यकता है। अन्तःकरण से अभिमान का नाश हुए बिना ज्ञान का उदय नहीं होता तथा अभिमान का नाश आत्मसमर्पण अर्थात् प्रपत्तिरूपा भक्ति से ही सम्भव है। दर्शनों का चरम लक्ष्य तो आत्म-साक्षात्कार ही है। इसकी प्राप्ति के लिए आकार का नाश होना परमावश्यक है। यही बात 'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्' इस कथन से स्पष्ट होती है।

---

१. अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं नत्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।

२. हरिभक्तिमहादेव्याः सर्वा मुक्त्यादिसिद्धयः।
मुक्तयश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिकावदनुव्रताः।
तस्मात् सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः।।

३. वेदोपयुक्ता यज्ञाश्च कर्माणि च शुभानि च।
न निष्पुनात्यभक्तं च सुराकुम्भमिवापगा।।
नारदपंचरात्र-१ अ० २ श्लोक-२८

४. रसौ वै सः और सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

तभी तो भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को तत्त्व-ज्ञान का उपदेश दिया तब अर्जुन का मोह दूर हो गया। यहीं अहंकार की पराजय और परा-भक्ति की महिमा है। इसके बिना दर्शन के क्षेत्र में परमतत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती, यही बात गीता में भिन्न शब्दों में कही गई है- 'श्रद्धावान्लक्षते ज्ञानम्' श्रद्धा भी तो भक्ति का ही एक रूप है।

भागवत धर्म व भागवत भक्ति का स्वरूपः-

भागवत धर्म है क्या इसकी चर्चा करना परमावश्यक है। उक्त धर्म तथा इनका भक्ति स्वरूप आपस में न मिलता है, न एक-दूसरे का पूरक है और न पर्यायवाची है। भागवत धर्म को सात्वत, वासुदेव, नारायण, पांचरात्र, एकान्तिक आदि नामों से भी जाना जाता है। महाभारत के कुछ श्लोक इस धारणा की पुष्टि करते हैं। इससे कुछ विचारको ने ऐसा समझा है कि नारायण और वासु धर्म भी एक है। वासुदेव जो दुर्गुणों से परे और सद्गुणाकार है, लोग उन्हें भगवान भी कहते हैं। भगवान की भक्ति करने वाले भागवत कहलाते हैं।

भागवत में श्रीकृष्ण जी उद्धव से कहते हैं कि हे उद्धव! पुरुषों के कल्याण के लिए मैंने तीन योग रूप काण्ड कहा है। १-ज्ञान योग, २- कर्म योग तथा ३-भक्ति योग (जिसे उपासना भी कहते हैं) भक्ति योग से भिन्न किसी काल या देश में मानव कल्याण का कोई दूसरा साधन नहीं है-

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता, नृपां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च, नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्।।

भा० स्क०-११-अ०२०-श्लोक-६

श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि किसी पुण्य प्रभाव से पापों को हनन करने वाली मेरी कथा में, कीर्तन में, सत्संग में अत्यन्त श्रद्धावान् तथा कर्मों के उदासीन पुरुष को भक्ति योग ही कल्याण रूप सिद्धि देने वाला है-

यदृच्छया मत्कथादौ, जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः।।

भा०स्क०-११-अ०-२०,श्लोक-८

भागवत में श्रीकृष्ण जी सुदामा से कहते हैं कि जो व्यक्ति भक्ति सहित फल, फूल, पत्र, जलादि मुझको देता है, उस श्रद्धालु पुरुष को भक्ति से दिए हुए को मैं आनन्दित होकर ग्रहण करता हूँ-

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

भा०स्क०-१०-अ०-८१-श्लोक-४

स्कन्दपुराण में विष्णु भगवान दक्ष से कहते है कि पूजनीय ब्रह्मनिष्ठ विद्वान्, जिस देश में तथा जिन घरों में नहीं पूजे जाते हैं, उस देश तथा घरों में तीन कष्ट प्राप्त होते हैं। पहला अनावृष्टि दूसरा बीमारी तथा तीसरा बिजली, भूकम्प आदि से भय।

अपूज्या यत्र पूजयन्ते पूजनीयो न पूज्यते।

त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्।।

स्क०पु०खण्ड-१ अध्याय-३-श्लोक-४५

श्रद्धा भक्ति आदि साधनों से सम्पन्न पुरुष को ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त होते हैं, अन्य को नहीं। यह कथन भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के चतुर्थ अध्याय में कहा है। भक्ति से दिए हुए फल, फूल, पत्र, जलादि तुच्छ पदार्थों को भी मैं आनन्दपूर्वक ग्रहण करता हूँ। बिना भक्ति से नहीं।

अध्यात्म रामायण में भक्ति को ज्ञान की जननी कहा गया है और भागवत माहात्म्य में भक्ति को विवेक वैराग्य की जननी कहा गया है।

भागवत और पाञ्चरात्र अलग-अलग सम्प्रदाय थे। इसका भी एक प्रमाण बाणभट्ट के हर्षचरित में मिलता है। विष्णु और इनके सहयोगी अच्युत, सत्य, पुरुष और निरुद्ध की उपासना वैखानस मतानुयायी करते थे। विष्णु की नारायण रूप में पूजा करने वालों को सात्वत नाम दिया गया। पाञ्चरात्र सिद्धान्त इनसे पुराना है। इस सिद्धान्त को मानने वाले पाञ्चरात्रिक कहलाये।

धीरे-धीरे कालक्रम से इन सम्प्रदायों में जो सूक्ष्मतर भेद थे वे मिटने लगे और वे सब मिलते चले गए और उन सबको मिलाकर भागवत धर्म कहा जाने लगा।

भगवान विष्णु और महालक्ष्मी का प्रतीकात्मक विवाह शालिग्राम और तुलसी का विवाह है। इस प्रसङ्ग में एक कथा वर्णित है-

देवोत्थानी एकादशी के दिन मनाया जाने वाला तुलसी विवाह विशुद्ध माङ्गलिक और आध्यात्मिक प्रसङ्ग है। देवता जब जागते हैं तो सबसे पहले प्रार्थना हरिवल्लभा तुलसी की ही सुनते हैं। इसीलिए तुलसी विवाह को देव जागरण के पवित्र मुहूर्त के स्वागत को आयोजन माना जाता है। तुलसी विवाह का सीधा अर्थ है, तुलसी के माध्यम से भगवान को आवाहन। कार्तिक शुक्ल पक्ष एकादशी को तुलसी पूजन एवं उत्सव मनाया जाता है। वैसे तो तुलसी विवाह के लिए कार्तिक शुक्ल नवमी की तिथि ठीक है, परन्तु कुछ लोग एकादशी से पूर्णिमा तक तुलसी पूजन कर पाँचवे दिन तुलसी का विवाह करते हैं। आयोजन बिल्कुल वैसा ही होता है, जैसे हिन्दू रीति-रिवाज से सामान्य वर-वधू का विवाह किया जाता है।

मण्डप, वर पूजा, कन्यादान, हवन और फिर प्रीति-भोज, सब कुछ पारम्परिक रीति-रिवाज के साथ निभाया जाता है। इस विवाह में सालिग्राम वर और तुलसी कन्या की भूमिका में होती हैं। यह सारा आयोजन यजमान सपत्नीक मिलकर करते हैं। इस दिन तुलसी के पौधे को यानी, लड़की को लाल चुनरी-ओढ़नी ओढ़ाई जाती है। तुलसी विवाह में सोलह शृङ्गार के सभी सामान चढ़ावे के लिए रखे जाते हैं। शालिग्राम को दोनो हाथों में लेकर यजमान लड़के के रूप में यानी भगवान विष्णु के रूप में और यजमान की पत्नी तुलसी के पौधे को दोनो हाथों में लेकर अग्नि के फेरे लेते हैं। विवाह के पश्चात् प्रीतिभोज का आयोजन किया जाता है।

तुलसी विवाह कथाः-

प्राचीन काल में जालंधर नामक राक्षस ने चारों तरफ बड़ा उत्पात मचा रखा था। वह बड़ा वीर तथा पराक्रमी था। उसकी वीरता का रहस्य था, उसकी पत्नी वृन्दा का पतिव्रता धर्म। उसी के प्रभाव से वह सर्वजयी बना हुआ था। जालंधर के उपद्रव से परेशान देवगण भगवान विष्णु के पास गए तथा रक्षा की गुहार लगाई। उनकी प्रार्थना को सुनकर भगवान विष्णु ने वृंदा का पतिव्रता धर्म भंग करने का निश्चय किया। बाद में वृंदा को भगवान विष्णु का यह छल-कपट ज्ञान हुआ। उधर उसका पति जालंधर जो देवताओं से युद्ध कर रहा था, वृंदा का सतीत्व नष्ट होते ही मारा गया। जब वृन्दा को इस बात का पता लगा तो क्रोधित होकर भगवान विष्णु को शाप दे दिया, कहा- जिस प्रकार तुमने छल से मुझे पति-वियोग दिया है, उसी प्रकार तुम भी अपनी स्त्री का छलपूर्वक हरण होने पर स्त्री-वियोग सहने के लिए मृत्यु लोक में जन्म लोगे। यह कहकर वृंदा अपने पति के शव के साथ सती हो गई। जिस जगह वह सती हुई वहाँ तुलसी का पौधा उत्पन्न हुआ। एक अन्य प्रसङ्ग के अनुसार वृंदा ने विष्णु जी को यह शाप दिया था कि तुमने मेरा सतीत्व भंग किया है। अतः तुम पत्थर बनोगे। विष्णु बोले, हे वृंदा! यह तुम्हारे सतीत्व का ही फल है कि तुम तुलसी बनकर मेरे साथ रहोगी। जो मनुष्य तुम्हारे साथ मेरा विवाह करेगा, वह परमधाम को प्राप्त होगा। बिना तुलसीदल के सालिग्राम या विष्णु जी की पूजा अधूरी मानी जाती है। शालिग्राम और तुलसी का विवाह भगवान विष्णु और महालक्ष्मी के विवाह का प्रतीकात्मक विवाह है।

भारत में मूर्तिपूजा अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित है- ऐसा लोग कहते और मानते हैं। पाणिनी के समय में भी राम, विष्णु, शिवादि की मूर्त्तियाँ बनती थी व मन्दिरों का निर्माण होता था। सूत्र युग में देवियों की पूजा होती थी। इस पूजा के पीछे उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न थे। कुछ लोगों को ऐसा विश्वास था कि पुत्र-प्राप्ति तभी हो सकती है, जब विशिष्ट देवताओं की पूजा की जाए और पुत्रोत्पत्ति के बाद उन बच्चों का नाम भी उसी देवता के नाम पर रखा जाता था जिसकी पूजा के फलस्वरूप पुत्रोत्पत्ति हुई है। यह प्रथा आज भी देखने को मिल जाएगी। चण्डी या भवानी के उपासक सन्तान प्राप्त होने पर चण्डिका प्रसाद या भवानीप्रसाद नाम रख लेते हैं। इस प्रकार विभिन्न कारणों व रूपों में मूर्तिपूजा का प्रचलन भारत में हुआ।

ग्रन्थ परिचय

प्रथम स्तबकः

कवि के पिता का नाम विष्णु है, इसलिए भगवान विष्णु के साथ प्रकारान्तर से कवि ने अपने पिता की भी स्तुति की है। कवि ने समस्त पापों का नाश करने, सांसारिक माया-मोह के बन्धन से मुक्ति पाने के लिए आराध्य देव भगवान विष्णु से प्रार्थना किया है। मंगलाचरण में श्रीगणेश जी की वन्दना की गई है। शिव-पार्वती की भी वन्दना का वर्णन है। दूसरे श्लोक में माँ सरस्वती की वन्दना की गई है। मङ्गल-कामना करते हुए कवि ने चतुर्थ श्लोक से ग्रन्थ की शुरुआत की है। इस

ग्रन्थ में सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पाने एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए स्तुति की गई है। भगवान विष्णु की जो शक्तियाँ श्रीकृष्ण की राधा और श्रीराम की सीता जी है, ऐसी शक्तियों का वर्णन इस स्तवक में मिलता है।

इस स्तबक के अन्त में राक्षस शकटासुर का बध करने वाले बाल-गोपाल भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति का वर्णन है।

द्वितीय स्तबकः-

इस स्तबक के प्रथम श्लोक में कवि ने उस दुर्गा जी की स्तुति का वर्णन किया है, जो नन्दकुल में पैदा हुई थी। जिसे कंस ने मारना चाहता था। मारते समय वह आकाश में उड़ गयी थी। मनुष्य जिस प्रकार राहु आदि अनिष्टकारी ग्रहों से मुक्ति पाना चाहता है, उसी प्रकार इस सांसारिक माया-मोह से मुक्ति पाने के लिए कवि ईश्वर से कहता है कि हे ईश्वर! हमारी बुद्धि आपसे हमेशा के लिए जुड़ जाए। कवि आगे के श्लोकों में कह रहा है कि इस सांसारिक विषयवासनाओं में फंसकर कौन नही छला गया है अर्थात् सभी छले गये हैं। तेरहवे, चौदहवे श्लोक में कवि ने ईश्वर से यह कह रहा है कि हे ईश्वर! मेरी वाणी की सफलता तभी सिद्ध होगी जब मैं सर्वदा भगवान का स्मरण करता रहूँ। मेरा हृदय तभी सार्थक होगा जब ईश्वर मेरे हृदय में वास करें। गोस्वमी तुलसीदास ने इसी प्रसङ्ग में कहा था कि सरस्वती जी की स्तुति करने में सामर्थ्य होते हुए यदि मैं सामान्य जन की स्तुति करूँ तो यह माँ सरस्वती जी के लिए अपमान की बात होगी।

इस स्तबक के अगले श्लोकों में ईश्वर भक्ति से रहित इन्द्रियों की निरर्थकता का वर्णन है। कवि कहता है कि मनुष्य योनि में जन्म दुर्लभ है, इसलिए मनुष्य अपने को भगवान श्रीराम के चरणों में अर्पित करना चाहिए। इसी में मनुष्य का उद्धार हो सकता है। ३६वें श्लोक में कवि कहता है कि हे ईश्वर! विष्णु भक्ति से सांसारिक-सुख विलुप्त हो जाय, मन की चञ्चलता समाप्त हो जाय। यदि मेरे मन में किसी प्रकार का आकर्षण हो तो मात्र विष्णु भक्ति के प्रति हो। जैसे भौरों का फूलों के रस के प्रति लोभ होता है। सांसारिक सुख (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) इन पाँचों से मुझे दूर करो, क्योंकि ईश्वर भक्ति में ही सुख है।

तृतीय स्तबकः-

इस स्तबक के मङ्गलाचरण में कवि ने षष्ठी की देवी का‍त्यायनी की स्तुति की है। दूसरे, तीसरे श्लोक में कवि द्वारा मनुष्य मात्र को कुटिलगति, आलस्य एवं जड़ता की घोर निन्दा की गयी है। कवि ने मनुष्य को धिक्कारते हुए कहता है कि मनुष्य योनि में जन्म लेकर क्यों भ्रमित हो। त्रैलोक्य वल्लभ, निर्मल मङ्गलयुक्त जिसके अङ्ग में श्री लक्ष्मी सुशोभित होती हुई हो, उस हरि की तुम सेवा करिये। मुक्ति पाने के लिए केशव का जप ही मुख्य साधन है।

इस स्तबक के सातवें श्लोक में यह वर्णन किया गया है कि यदि मानव को आसानी से ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है, तो उन्हे ईश्वर की शरण में जाना चाहिए। कवि आगे कहता है कि तुलसीदल से सुसज्जित सुन्दर माला को धारण करने वाले तमालपत्र के समान श्यामवर्ण कोमल वाले हे ईश्वर! तुम मुझ पर कृपा

दृष्टि डालो जिसे हमारे तीनो प्रकार के ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) नष्ट हो जाय। कवि प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे प्रभु! सांसारिक भोग, वासनाओं से मुझे हमेशा दूर रखें। यहां पर अनुप्रास अलङ्कार का वर्णन है।

चौतीसवें श्लोक में कवि ने भगवान श्रीकृष्ण के मधुर रूप का स्मरण करते हुए कहता है कि हे कृष्ण! आपने वन में जब गोपियों के साथ क्रीड़ा महोत्सव किया, उसके स्वर एवं मधुर वेणु के मधुर स्वर इन दोनों के स्मरण मात्र से मनुष्य के पाप शान्त होते है और सुख मिलता है।

अड़तीसवें श्लोक में वराहावतार भगवान की स्तुति की गई है और इस स्तबक के अन्तिम श्लोक में यद्यपि भगवान विष्णु की स्तुति है किन्तु कल्याणकारी अर्थ में भगवान शिव का प्रयोग किया गया हैं। इस श्लोक में कर्मधारय समास का वर्णन है।

चतुर्थ स्तबकः-

इस स्तबक के मङ्गलाचरण में कवि द्वारा भगवान विष्णु की स्तुति की गयी है। कवि कह रहा है कि भगवान विष्णु के वक्षस्थल पर स्थित कौतुभमणि से किरणें निकलकर भुजाओं पर पड़ती है, वे भुजाएं मेरी रक्षा करें। जिनके पैरों के नाखून इतने निर्मल और प्रकाशमान है कि जिनसे उनका चरण प्रकाशित रहता है। ऐसे प्रकाशमान से युक्त भगवान मेरी रक्षा करें। चौथे, पॉचवे में शिव का स्मरण करते हुए कवि कहता है कि हे ईश्वर! मुझे सांसारिक बन्धनों से मुक्त करो तथा मेरा मन ईश्वर भक्ति में ही लगा रहे। सातवें श्लोक में गोविन्द चरित की महत्ता गंगा आदि तीर्थो से अधिक बताई गई है। नौवें श्लोक में रावण के संहारक के रूप में तथा रावण के बन्धन से तीता जी को मुक्त कराने वाले प्रभु श्रीराम का वर्णन है। दशवें श्लोक में नरसिंहावतार का वर्णन है। तेरहवें श्लोक में कवि कह रहा है कि मनुष्य का बन्धन और मोक्षा का कारण उसका चित्त ही है। आगे कवि सलाह देता है कि मनुष्य को अपने हृदय को स्थिर रखकर ईश्वर की शरण में जाना चाहिए। जिसकी कृपा से यह मायारूपी भवसागर को पार किया जा सके। सोलहवें, सत्रहवें श्लोक में यद्यपि कवि द्वारा भगवान विष्णु की स्तुति की गयी है किन्तु नाम अलग-अलग है। ये नाम है- वासुदेव, केशव, शिव, नृसिंह, हरि। जो मनुष्य वासुदेव की पूजा करते है, उनका पुनर्जन्म नही होता है। केशव की पूजा करने से परमपद प्राप्त होता है। शिव की पूजा अर्चना से कल्याण होता है, वे कल्याणकारी हैं, नृसिंह की पूजा करने से न्याय मिलता है इस तरह का वर्णन इन श्लोकों में मिलता है। शिव का नाम लेने और भगवान विष्णु की भक्ति करने से सांसारिक माया-मोह से छुटकारा मिलता है।

अठारहवें श्लोक में देवकी और पूतना नामक राक्षसी ने मातृ-भाव से आपके प्रति मन लगाया और दोनों की यह इच्छा थी कि मैं श्रीकृष्ण की मॉ बनूँ। किन्तु दोनों में अन्तर यह था कि देवकी ने सगी मॉ का दायित्व निर्वाह किया और पूतना राक्षसी मॉ का दायित्व निर्वहन किया। मातृ-भाव तो दोनों को मिला क्योंकि दोनो ने श्रीकृष्ण को दूध पिलाया था। इस कारण पूतना राक्षसी होते हुए भी मोक्ष को प्राप्त हुई। उन्नीसवें श्लोक में यह वर्णन है कि जिस मनुष्य का कोई सहारा न हो,

अर्थात् जिसके माता-पिता, भाई-बहन, धन-विद्या आदि कोई न हो, वह व्यक्ति यदि भगवान विष्णु का स्मरण करता है तो वे उसकी सहायता के लिए सब कुछ बन जाते है। तैतीसवें श्लोक में कवि वैष्णव परम्परा से जुड़े सभी माध्यमों का स्मरण करते हुए कहता है कि गंगा, तुलसी और उनके साथ जुड़े हुए हमारा मन ये तीनों मिलकर एक माला तैयार हो, जिसे मै आपके चरणों में चढ़ा दूँ और उन तीनों पदार्थों से तैयार माला मुझ तीनो प्रकार (दैहिक, दैविक, भौतिक) के तापों से मुक्त करे। आगे कवि कहता है कि हे ईश्वर! आपके चरण-कमलों में आश्रय लेने वाले को सभी प्रकार के कल्याण प्राप्त होते हैं। आपके चरणों की सेवा लक्ष्मी स्वयं अपने हाथों से करती हैं और दिव्य तुलसी दल जिनके पूजा में समर्पित होता है वह भगवान विष्णु सांसारिक माया-मोह को नष्ट करके मुझे कैवल्पक फल (मोक्ष) प्रदान करे।

पञ्चम स्तबकः-

इस स्तबक के मङ्गलाचरण में कवि भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कह रहा है कि हे ईश्वर! सांसारिक बाधाओं से उत्पन्न दाह को अपनी कृपा रूपी धारा से शान्त करें। दूसरे एवं तीसरे श्लोक में क्रमशः नारायण और श्रीराम की स्तुति का वर्णन है। आगे के श्लोक में जिन्होने कंस का बध किया था ऐसे श्रीकृष्ण को कवि ने नमस्कार किया है। पॉचवे में जिन्होने मुर, राक्षस का संहार किया था ऐसे मुरारि (श्रीकृष्ण) का वर्णन है। वामन के रूप में भगवान विष्णु की स्तुति का वर्णन है। आठवें श्लोक में केशव के रूप में नवें में नन्द-पुत्र के रूप में दसवें में देवकी पुत्र के रूप में ग्यारहवें में नारायण के रूप में भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति की गई है।

पन्द्रहवें श्लोक में उन देवियों की स्तुति की गयी है, जिन्होंने भगवान विष्णु के चरणों को निरन्तर सेवा किया है। इन देवियों में गंगा, लक्ष्मी, तुलसी आदि प्रमुख है। इक्कीसवें श्लोक में ग्रन्थकार कहता है कि मनुष्य भगवान की पूजा अर्चना करते है, फिर भी कुछ लोगों को ऐश्वर्य प्राप्त नहीं होता है वे शत्रुओं से निर्भय नही हो पाते हैं तथा वंश वृद्धि नहीं हो पाती है । ऐसी स्थिति में मनुष्य को यह नहीं समझना चाहिए कि भगवान की पूजा, अर्चना व्यर्थ है क्योंकि पूजा, अर्चना करने पर अपेक्षित फल (लाभ) न मिलना यह पूर्व जन्म के पापों का भी परिणाम हो सकता है। जब पूर्व जन्म का भोग समाप्त हो जाता है तो भविष्य में सुख मिलता है। जैसे आग जलाने पर पहले धुँआ ही होता है। बाद में अग्नि प्रकट होती है। ऐसे ही भगवत्भक्ति करने पर पहले कष्ट होता है बाद में सुख मिलता है। आगे कवि कामदेव से पूछता है कि यद्यपि तुम कोमल हृदय के हो फिर भी मुनियों को अपने बाण से पीड़ा पहुँचाते हो। तुम्हारे पिता नारायण तुम्हारे इस कार्य से क्रोधित होते है। तुम्हारे प्रभाव में जो लोग आ जाते है, वे (यम) मृत्यु को प्राप्त करते हैं, किन्तु जो लोग निष्काम हैं उनको ईश्वर मोक्ष प्रदान करता है।

लक्ष्मी ने रावणादि राक्षसों/राजाओं के कुल में भी निवास किया। रावण ने समृद्धि प्राप्त करके ऋषियों/मुनियों को कष्ट पहुँचाया। यह कार्य अनुचित था। इसीलिए

भगवान राम ने आपको (लक्ष्मी) सीता अवतार रूप में लंका भेजा था। यह प्रसंग पच्चीसवें श्लोक में है। सत्ताइसवें श्लोक में कवि ने विष्णु को आदि- पुरुष (प्रथम पुरूष) और लक्ष्मी को मूलप्रकृति (प्रथम महिला) कहा है। इसीलिए ये दोनों इस संसार के माता और पिता हैं।

ग्रन्थकार आगे माता से कहता है कि क्या आपको औरस पुत्रों को बिना भेद-भाव का पोषण नहीं करना चाहिए अर्थात् करना चाहिए। अट्ठाइसवें, उनतीसवें श्लोक में कवि उस मातृ तत्त्व की प्रार्थना करते हैं जो आप सभी को दयाभाव से देखती हैं। सभी को अपने मधुर दृष्टि से देखकर प्रसन्न करती है। आप सन्तान में भेद नही करती हैं। किन्तु संसार में जीव या प्राणी अपने स्वभाव के अनुसार आप में गुण या दोष देखा करते हैं।

कवि भगवान विष्णु की आराधना में अपना मन इस तरह से लगा देता हे कि दुर्भाग्य, दुःख, दरिद्रता उससे दूर चले जाते हैं। अर्थात् उसे इन भावों का अनुभव ही नही होता। इसलिए कवि बार-बार यह कहता है कि सम्पूर्ण सांसारिक माया-मोह आदि बन्धनों को दूर करके ऐसे भगवान विष्णु की आराधना क्यों न की जाय।

षष्ट स्तबकः-

इस स्तबक के मङ्गलाचरण में भगवान गोविन्द (विष्णु) के गुणों की चर्चा है। इनकी कृपा से जीव को संसाररूपी अन्धकार से मुक्ति मिलती है, लक्ष्मी की कृपा प्राप्त होती है तथा प्राणी उनको प्रणाम करके प्रसन्न होता है। दूसरे श्लोक में कवि ने भगवान कृष्ण की स्तुति करते हुए कहता है कि उनके चरण कमलों की धुलि जब गंगाजल में मिश्रित हो जाती है तो उन जल के कण मुझ पर गिरकर मुझे कृतार्थ करें। तीसरे श्लोक में भगवान अच्युत के नाम से स्मरण किया गया है। कवि कहता है कि जब सभी सांसारिक कार्य भगवान के चरणो में अर्पित करके किए जाते है तो उन कार्यों से उत्पन्न संस्कार कार्य करने वाले को बाँध नही पाते हैं। जिसके परिणाम-स्वरूप सांसारिक कर्मों में भी लगा हुआ मनुष्य अपने कर्म फल से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। गीता में इस भाव को निष्काम कर्मयोग कहा गया है। इस कथन का वर्णन आगे भी किया गया है।

सातवें श्लोक में कवि ने वासुदेव का स्मरण करते हुए कहता है कि यह संसार सांसारिक बन्धनो के कारण व्याकुल हो गया है। इसलिए हे प्रभु! आपने विश्व के कल्याण के लिए जो व्रत ले रखा है और मैं जो इस सांसरिक बन्धनों में बुरी तरह फँसा हुआ हूँ। मुझे इससे मुक्त कराइये। आठवें में कवि ने मुकुन्द नाम से भगवान का स्मरण किया है और कहता है कि जो मनुष्य आपको न जानकर केवल शब्दों की दुनिया में खोया रहता है, इस ज्ञान के विषय में किया गया श्रम व्यर्थ रहता है। आगे कवि ने माधव, बलराम के छोटे भाई श्रीकृष्ण, तथा रावण के शत्रु राम इत्यादि नामों से स्मरण किया है। गोवर्द्धन पर्वत की लीला का भी वर्णन किया गया है। सत्रहवें श्लोक में कवि ने ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ कह रहा है कि जिस प्रकार कुलीन स्त्री निश्छल भाव से अपने पति का ध्यान करती है उसी प्रकार से

मेरा हृदय यद्यपि वायु द्वारा कँपाये गए जल की भाँति लक्ष्मी को प्राप्त करने और उनकी रक्षा करने की लालसा के कारण चञ्चल है। फिर भी ऐसे चञ्चल मन को आप की ही कृपा से एकाग्र करके आपका ध्यान और चिन्तन किया जा सकता है। बीसवें में कवि कहता है कि विष्णु की कृपा से जो फल प्राप्त होते हैं वे फल कभी भी क्षीण नही होते हैं। अन्ततः परमधाम को प्राप्त कराते हैं।

कुब्जा (कंस की सेविका जो कंस के लिए चन्दन (लेप) आदि बनाती थी।) जैसी स्त्री इतनी सौभाग्यवती सिद्ध हुई कि वह मात्र प्रेम भाव युक्त चन्दन देने और उसके द्वारा दिए हुए चन्दन माला से आप इतने प्रसन्न हुए कि उसे आपने देवताओं से भी ऊँचा स्थान प्रदान किया। तो कवि कहता है कि क्या मेरी थोड़ी सी भक्ति से आप प्रसन्न नहीं होंगे। (यह कथा भागवत पुराण में आती है) छब्बीसवें श्लोक में केशी असुर के बध का वर्णन है। आपके हाथों से मारे जाने के कारण दुष्कर्म करने पर भी उसे मोक्ष की प्राप्ति हुई। ऐसे दयालु भगवान की मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।

सैतीसवें में भगवान विष्णु को श्रीराम के रूप में स्मरण किया गया है। तुलसी की माला से युक्त गरूड़ पर सवार पीताम्बर पहने हुए तथा शाङ्‌र्ग धनुष धारण किए हुए ऐसे विष्णु को कवि ने स्मरण किया है। अड़तीसवें, उनचालिसवें में भगवान विष्णु को नृसिंह रूप में कवि ने याद किया है। कवि कहता है कि भगवान विष्णु की थोड़ी सी भी कृपा दृष्टि प्राप्त होने पर मनुष्य को स्वर्गलोक का स्वामित्व प्राप्त हो जाता है अर्थात् मोक्ष मिल जाता है। यमराज भी उसकी आज्ञा के वशीभूत हो जाता है। लक्ष्मी की सैदव उपस्थिति बनी रहती है। ऐसे भगवान विष्णु जिस पर प्रसन्न होते हैं, सभी वैभव उसके सेवक बन जाते हैं।

सप्तम स्तबकः-

इस स्तबक में प्रारम्भ में भगवान विष्णु को मुरारि नाम से स्मरण करते हुए कवि कहता है कि ऐसे मुरारि जिनके हृदय में स्थित कौतुभमणि में लक्ष्मी का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, किन्तु लक्ष्मी को ऐसा लगता है कि मानों उनके हृदय में किसी दूसरी स्त्री का वास है। ऐसी स्थिति में असूया भाव से व्याकुल लक्ष्मी भगवान मुरारि (विष्णु) की उस छाया से लिपट जाती है। ऐसी लक्ष्मी से आश्लिष्म् (आलिङ्गित) भगवान विष्णु हमारी रक्षा करें। दूसरे श्लोक में कवि उन मनुष्यों को सम्भाषण के लिए भी मना करता है जो विष्णु के चरणों से विमुख है और सांसारिक भोग में आसक्त रहते है। छठे एवं आगे के श्लोक में कवि प्राणी मात्र से कह रहा है कि सांसारिक मोह के फूंसकर क्यों अपने आपको दुःखी करते हो और अपने कानों में क्यो नहीं भगवान के नाम रूपी शब्दो को डालते हो। अर्थात् भगवान राम के चरणों की छाया में विश्राम करो, जहां खेल-खेल में ही तुम्हे चाहने से अधिक फल की प्रापित होगी। इस भाव से लाभ यह होगा कि यदि लोभ, अहंकार को भगवान के चरणों मे सौंप दोगे तो तुम्हारे अन्दर के कष्ट दूर होंगे। अगर तुम्हें क्रोध करना है तो इस माया मोह संसार से करो। यदि तुम्हे कुछ कहना है तो लगातार नारायण का

नाम जपो।

तेरहवें श्लोक में कवि मानव को उपदेश देते हुए कह रहा है कि कौन सा ऐसा मूर्ख व्यक्ति होगा जो जल की प्राप्ति के लिए मृग-तृष्णा में परिश्रम करेगा। चकोर पक्षी अपने नेत्रों से चन्द्रमा की ओर देखता है कि वह अमृत का पान करना चाहता है, लेकिन मिलता नहीं है। उसी प्रकार व्यक्ति संसार में सुख पाने की इच्छा कामना से परिश्रम तो करता है लेकिन वह प्राप्त नही कर पाता। इसलिए हे मनुष्य! तुम मूर्खता छोड़ो। तुम क्यों नही भगवान की शरण में जाते हो। अठारहवें श्लोक में कवि ने गोविन्द को सभी गंगा आदि बड़े तीर्थो का गुरू कहा है। क्योंकि गंगादि सभी तीर्थ उनके चरणों से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए हे मनुष्य! तुम्हें सांसारिक माया-मोह त्यागकर गोविन्द के चरणों में जाना चाहिए। आगे कवि भगवान विष्णु को परम-ब्रह्म, प्रकाश स्वरूप कहा है, क्योंकि यह सम्पूर्ण माया जाल उन्हीं से उत्पन्न है और उन्हीं से सम्पूर्ण सृष्टि भी उत्पन्न हुई है। कवि कह रहा है कि संसाररूपी दावानल में प्रभु श्रीराम का नाम उस घने मेघ की भाँति है जो संसार के ताप का नाश करती है। इस श्रीराम शब्द में निहित गूढ़ अर्थ स्पष्ट न होते हुए भी इस प्रकार गर्जना करते हैं कि सभी कष्ट एक ओर हो जाते हैं और प्राणी मात्र को मुक्ति प्राप्त होती है।

चौबीसवें श्लोक में कवि कहता है कि यह संसार मेघ का स्वरूप है जो धर्मरूपी सूर्य को ढककर मनुष्यों को विषय वासनाओं में लिप्त करता रहता है तथा यह विष्णु-भक्तों को स्त्रियों के कटाक्षरूपी बिजली के गर्जना से भयभीत करता रहता है। इसे (मेघ) भगवान विष्णु का गरुड़ ही अपने पंखों की हवा से उड़ा सकता है। अर्थात् मनुष्य को विषय वासनाओं से दूर कर सकता है। कवि आगे कह रहा है कि बड़ा से बड़ा दान सुख का कारण नहीं होता है। यज्ञ आदि भी सुख के कारण नहीं होते क्योंकि इनके द्वारा प्राप्त फल मनुष्यों द्वारा भोग किए जाने पर क्षीण हो जाते है, किन्तु भगवान विष्णु की सेवा से जो सुख मिलता है वह अनन्त होता है और कभी भी नष्ट होने वाला नहीं होता है। आगे कवि तुलसी की प्रार्थना करते हुए कह रहा है कि हे तुलसी! तुम्हारी महिमा प्रसिद्ध है। क्योंकि अनेकों बार पापों को करने वाले व्यक्ति को तुम पाप से मुक्त कर देती हो तथा तुम्हारे पति भगवान विष्णु तुम्हारे भक्तों को मुक्ति देते हैं। कवि कहता है कि कृष्ण के बड़े भाई बलराम का आयुध हल कहा गया है। उनका चित्त अत्यन्त निष्कपट है, किन्तु स्यमन्तक मणि के कारण क्रोध से उनका (बलराम) चित्त कठोर हो गया है। इसी प्रकार सीता के कारण भगवान राम को कष्ट हुआ तो सीता के प्रति भगवान राम का क्रोधित होना स्वाभाविक है।

अष्टम स्तबकः-

इस स्तबक के प्रारम्भ में कवि ने भगवान कृष्ण का स्मरण किया है। गोपियां कह रहीं हैं कि यह नन्द-पुत्र श्रीकृष्ण अत्यन्त अद्भुत है। ऐसा लगता है जैसे यह बाल शिव, ब्रह्मा या विष्णु प्रतीत होता है। गोपियों की यह बात सुनकर यशोदा अपने पुत्र (श्रीकृष्ण) को अपने वक्ष से लगा लेती है। आगे कवि कहता है कि यह परमात्मा दीपक के समान है जिनके द्वारा संसार रूपी अन्धकार दूर होता

है। दीप सामग्री के रूप में भक्त के हृदय को दीप-दान, भगवान विष्णु के दोनों चरणों में समर्पित भक्ति उस पात्र में तेल है और भगवान के अत्यन्त निर्मल जो गुण हैं, वही गुण उस दीपक की बत्ती है। हृदय में स्थित ईश्वर की प्रभा (तेज) ही उस दीपक की ज्योति है और इस दीप की काली रेखा (धुंआ) यह संसार की माया है। इस माया से पार पाने (मुक्ति) के लिए ईश्वर ही एक मात्र साधन है। चौथे श्लोक में कवि कहता है कि ईश्वर के चरणों की भक्ति से जो लाभ प्राप्त होता है, उसमें प्रथमतः मन पर विजय तत्पश्चात् ईश्वर के प्रति सेवा भाव। इन दोनों से सुख-दुःख, मान-अपमान आदि विपरीत परिस्थितियों में भी समता का भाव प्राप्त होता है। इन सबकी प्राप्ति के पश्चात् ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है और यह मोक्ष का साधन है। कवि अपने मन (हृदय) से कह रहा है कि यदि तुम माया-मोह आदि सांसारिक भावों में लिप्त रहोगे तो तुम्हें मात्र कष्ट ही कष्ट मिलेगा, किन्तु यदि अपने कमल हृदय में भगवान विष्णु का दर्शन करोगे तो तुम्हारे सभी (कर्मो) कष्टों का नाश हो जायगा। कर्मों के नाश हो जाने के कारण कर्मों से उत्पन्न सांसारिक दुःख-सुखादि की प्राप्ति नहीं होगी। जिसके परिणामस्वरूप कभी कष्ट न होने वाला तुम्हें ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होगी।

दशवें श्लोक में कवि द्वारा राम (विष्णु) कथा को नरक से उत्पन्न सभी दुःखों को नष्ट करने वाला कहा गया है। यह कथा सभी मनोरथों को भी सिद्ध करती है। कवि आगे कहता है कि हे चित्त! तुम ईश्वर की भक्ति भूलकर व्यर्थ में क्यों सांसारिक माया के बन्धन में फंसे हो, यह आश्चर्य का ही विषय है। क्योंकि जो दुःख तुमने मां के गर्भ में रहकर पाया, जन्म के बाद सांसारिक दुख उठाया, उन सभी कष्टों को भूल गए हो तथा सांसारिक माया-मोह में पुनः उलझ गए हो। तुम उस ईश्वर की शरण में क्यों नही जाते हो जिसमें तुम्हें मुक्ति मिल सके। इसी तथ्य को कवि ने आगे के कई श्लोकों में विविध प्रकार से व्याख्यायित किया है। बीसवें श्लोक में कवि कहता है कि पवित्र बुद्धिवाले यति, विरागी आदि भगवान विष्णु के विभिन्न लीलाओं का स्मरण करते हैं एवं भगवान की स्तुति करते हैं, जिनके द्वारा वे संसार सागर को पार करते हैं। कवि कहता है कि तीनों लोको में तुलसी के समान कोई पुष्प नहीं है, जल के समान कोई दान नहीं है। गीता शास्त्र के समान कोई अन्य शास्त्र नहीं है। कौन देवता भगवान नारायण के समान है और उनके स्मरण से अधिक भक्ति कौन सी है। अर्थात् उपर्युक्त ये सभी सर्वश्रेष्ठ है। आगे के कई श्लोकों में भगवान की आकृति, कुण्डल आदि अलंकार और पुष्प माला आदि की चर्चा की गई है। सत्ताइसवें श्लोक में कवि कह रहा है कि भगवान विष्णु के मुख पर जब हास्य होता है, तो उनके दॉतों से निकलने वाली किरणें दूध के समान प्रतीत होती है। इस कारण लक्ष्मी को जो अपने पिता के क्षीर सागर से दूर होने का कष्ट होता है वह शान्त हो जाता है। आगे भगवान के शंख, चक्र, गदा, पद्म से युक्त स्वरूप का वर्णन है। इनका चक्र संसार की पीड़ा को काटने वाला है तथा शंख की शोभा चन्द्रमा के समान है। भगवान विष्णु के देह की शोभा कर्पूर और चन्द्र के समान बतलाया गया है। आगे कवि कहता

है कि यदि हृदय में हरि का वास हो गया हो तो माया उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती । जिसका ध्यान भगवान विष्णु में लग गया हो, वह कभी भी पराभव को नही प्राप्त करता है। कवि आगे कह रहा है कि हे प्रभु! मैं केवल आपके चरण कमलों की सेवा करता हूँ, तब भी आप मेरे कष्टों को दूर करने में बिलम्ब क्यों करते हैं, अर्थात् मेरे कष्टों को अविलम्ब दूर करें। हृदय में हरि का वास हो जाने पर सभी विघ्नों का नाश हो जाता है।

विषयवस्तु के अन्तिम में कवि कहता है कि मेरा मन लक्ष्मी स्वरूप है, जो कि खिले हुए हृदय पद्म में एकान्त में सदा ही विष्णु के साथ संगोत्सव मनाता है। अर्थात् कवि का चित्त ब्रह्मत्व से एकत्व प्राप्त कर चुका है, जिस सीमा पर पहुँचकर वाणी आदि इन्द्रियों की गति अवरूद्ध हो जाती है। अर्थात् कवि ब्रह्मानन्द की प्राप्ति करता है। ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक में कवि ने अपना परिचय दिया है। माता का नाम मानी और पिता का नाम विष्णु है। खुद कवि अपना नाम पुरुषोत्तम बतलाया है। इस ग्रन्थ की रचना सज्जनों के लिए की गई है।

कवि परिचयः

ग्रन्थकार श्रीपुरुषोत्तम भक्ति-रस धारा के सार्थवाहक हैं। उन्होंने विष्णुभक्ति की ऐतिहासिकता स्वीकार कर अपनी प्रतिभा तथा कल्पना के सहारे अनेक प्रसङ्गों का समावेश किया है। वस्तुतः उन्होंने अपनी इस रचना के द्वारा भक्ति-सिद्धान्त एवं विष्णुलीला की अन्तश्चेतना की जीवनी लिखी है। कवि ने इस ग्रन्थ में साङ्गोपाङ्ग भक्ति- रस की स्थापना की है। यह स्थापना वैष्णव जगत के लिए एक नवीन घटना है। इस ग्रन्थ में कवि का भगवान विष्णु के अतिरिक्त देवी-देवताओं के प्रति भी विशेष श्रद्धाभाव है। क्योंकि उनके द्वारा उनके देवी-देवताओं को स्मरण किया गया है। उनकी मातृभाषा क्या थी, यह तो कहना कठिन है, किन्तु संस्कृत भाषा का वे जीवन में व्यावहारिक प्रयोग करते रहे होंगे, ऐसा विश्वास है। ग्रन्थकार के जन्मस्थान के विषय में प्रमाण प्राप्त नही हो सका है, किन्तु अपने माता-पिता का परिचय इस ग्रन्थ के अन्त में दिया है। उनकी माता का नाम मानी तथा पिता का नाम विष्णु है। कवि के द्वारा इसी ग्रन्थ की एक टीका ''विष्णुकल्पलताप्रबोध'' लिखी गई है, इसका उल्लेख कैटेलॉग्स कैटेलॉगरम् के पृष्ठ संख्या-३४२ पर है। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना करके भगवत्भक्ति के प्रति विशेष स्थान प्राप्त कर लिया।

इस ग्रन्थ का नाम विष्णुभक्तिकल्पलता है। ग्रन्थकार का नाम पुरुषोत्तम, ग्रन्थकार के पिता का नाम विष्णु टीकाकार के पिता का नाम रामभक्त तथा संयोगवशात् सम्पादक का नाम रामचन्द्र है। यह ग्रन्थ आठ स्तबकों में विभक्त है। स्तबक का नाम क्रमशः इस प्रकार है-

१.भक्ति उद्भव २. रागिविरागिफलविवेक

३.स्वाभिप्राय प्रकाश	४. भक्त्युपद्रवनिराकरण
५.गौरवदर्श	६. विष्णुविज्ञप्तिक
७.संसारतिरस्करण	८. चित्रबोध

इस ग्रन्थ का काल (समय) सन् १५९७ ई० के पूर्व का प्रतीत होता है, क्योंकि इसी ग्रन्थ की एक टीका सन् १५९७ ई० में ''विष्णुभक्तिकल्पलता प्रकाश'' नामक महीधर द्वारा लिखी गई है।

छन्दोविन्यास एवं अलंकार

ग्रन्थकार पुरुषोत्तम छन्दों के प्रयोग में सुतरां दक्ष हैं। इन्होंने इस ग्रन्थ में १२ प्रकार के विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। कवि के द्वारा ग्रन्थ के प्रथम स्तबक में मात्र मालिनी छन्द का ही प्रयोग किया गया है। द्वितीय और चतुर्थ स्तबक की शुरूआत बसन्ततिलका छन्द से की गई है, किन्तु द्वितीय स्तबक में रथोद्धता छन्द की अधिकता है। तृतीय, षष्ठ, सप्तम और अष्टम स्तबक के प्रारम्भ में शार्दूलविक्रीडित छन्द का वर्णन है तृतीय स्तबक के श्लोक संख्या-२ से ३८ तक द्रुतविलम्बित छन्द का समावेश है। पञ्चम स्तबक की शुरुआत स्रग्धरा छन्द में है। इन छन्दों के अतिरिक्त अन्य कई छन्दों का समावेश है, जिसका विवरण छन्दः सूची में उल्लिखित है। अलंकार में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ में अन्य अलंकारो की अपेक्षा अनुप्रास अलंकार की अधिकता है।

टीकाकार का परिचयः-

टीकाकार महीधर ने भगत्वभक्ति से अपने पाप को घटाने तथा सांसारिक बन्धनों से मुक्ति के लिए प्रार्थना की है। इनके पिता का नाम रामभक्त तथा पितामह का नाम रत्नकार है। इनके गुरू का नाम रत्नेश्वर है तथा जन्म स्थान बनारस हैं। इन्होंने सन् १५९७ ई० में इस ग्रन्थ की ''विष्णुभक्तिकल्पलता प्रकाश'' नामक टीका लिखी। इस टीका के अन्त में इन्होंने अपना नाम महीदास भी बतलाया है। इसका प्रमाण कैटेलॉग्स कैटेलॉगरम् के पृष्ट संख्या-४४४ में भी मिलता है। इसके अतिरिक्त इनके अनेक ग्रन्थ हैं, जो अधोलिखित हैं-

१. अद्भुतविवेक	२. ईशावास्योपनिषद्भाष्य
३. एकांक्षरकोश	४. कात्यायनगृह्यसूत्रभाष्य
५. कात्यायनशुल्वसूत्रभाष्य	६. नृसिंहपटल
७. पुरुषसूक्तटीका	८. मंत्रमहोदधिनौका टीका
९. मातृकाक्षरनिघण्टु अथवा	१०. योगवासिष्ठसारविवृति

मातृकानिघण्टु

११. रामगीताटीका	१२.रुद्रजपभाष्य
१३. वेददीप आन वाजसनेयिसंहिता	१४. षडङ्गरुद्रभाष्य
१५. सारस्वतप्रक्रिया टीका	१६. श्रौतमणिविनियोगसूत्रार्थ

मातृका परिचयः

इस ग्रन्थ के सम्पादन में मुझे तीन मात्रिकायें राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा०वि०) गंगानाथ झा परिसर पाण्डुलिपि विभाग, प्रयाग से प्राप्त हुई हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है-

अ-मातृकाः

सर्व प्रथम मुझे यह मातृका प्राप्त हुई, जिसकी अधिगम संख्या-३६८७२ है और यह मातृका पूर्ण है। अतएव इस मातृका को मुख्य आधार बनाया गया है। इसमें पत्रों की संख्या-४९ तथा कुल पृष्ठ-९८ है। प्रत्येक पृष्ठ पर आठ पंक्तियाँ है, जिसमें प्रत्येक पंक्ति में लगभग २६ वर्ण आए हैं। इसकी लिपि देवनागरी है। प्रथम स्तबक में कुछ जगहों पर पत्र टूटे हुए हैं। इस ग्रन्थ में काल का उल्लेख नहीं है।

पुष्पिका- मानी माता पिता विष्णुर्यस्याख्या पुरुषोत्तमः।
विष्णुभक्तिलतां चक्रे सतां चक्रे कृताञ्जलिः।।

इति श्रीपुरुषोत्तमकृतायां विष्णुभक्तिकल्पलतायां चित्तबोधो नामाष्टमः स्तबकः।

क-मातृकाः-

देवनागरी लिपि में लिखी गई यह मातृका सटीक है। यह मातृका अपूर्ण है किन्तु पठनीय है यह मातृका चतुर्थ स्तबक के श्लोक संख्या-११ तक है। अधिगम संख्या-२१८२३ है। इस मातृका में पत्रों की संख्या-३० तथा कुल ६० पृष्ठ है। प्रत्येक पृष्ठ में दस पंक्तियां तथा प्रत्येक पंक्ति में लगभग ४० वर्ण है। ग्रन्थ अपूर्ण होने के कारण इसकी पुष्पिका प्राप्त नही है।

ख-मातृकाः-

तीसरी मातृका 'विष्णुभक्तिकल्पलता प्रकाश' प्राप्त हुई। देवनागरी में लिखी गई यह मातृका महीधर की है। इस मातृका का अधिगम संख्या-२६५६९ हैं। यह टीका अपूर्ण और कहीं-कहीं पर अशुद्ध भी है। पत्रों की संख्या-१८ एवं कुल पृष्ठ ३६ है। प्रत्येक पृष्ठ पर १५ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में लगभग ५० वर्ण है। इस मातृका में कई श्लोकों की टीका नही है। टीकाकार ने टीका के अन्त में इस

टीका का परिचय दिया हैं।

पुष्पिका- श्रुतिबाणरसेन्दुमानवर्षे नभसिस्कन्ददिनेऽसितऽर्कवारे।
महिदासबुधो गिरीशपुर्यां कृतावान्कल्पताप्रकाशमेतत्॥

मातृका का कालः-

ग्रन्थ पुष्पिकानुसार इसका काल संवत् १६५४ है। कैटेलॉग्स कैटेलागरम् के पृष्ठ संख्या-४४४ में इस टीका का समय सन् १५९७ ई० उल्लिखित है, जो समीचीन है। यह टीका श्रावण मास के कृष्णपक्ष की षष्ठी तिथि, रविवार को गिरीशपुरी (वाराणसी) में लिखी गई।

धन्यता ज्ञापन

इस ग्रन्थ के सम्पादन कार्य के मध्य में जिनके परामर्श एवं हस्तलेख आदि सुलभ कराने के प्रयत्न से मैं उपकृत हुआ हूँ, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना मेरा सहज कर्तव्य है। सर्वप्रथम मैं प्रो० गयाचरण त्रिपाठी, निवर्तमान प्राचार्य, गंगानाथ झा परिसर इलाहाबाद के प्रति हार्दिक सद्भाव व्यक्त करता हूँ, जिनके द्वारा इस ग्रन्थ के सम्पादन-कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। प्रो० प्रकाश पाण्डेय, प्राचार्य, गंगानाथ झा परिसर, इलाहाबाद के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने तथा सुसज्जित करने में अमूल्य योगदान दिया। उनकी सहज कृपा सुधांशु की उस चन्द्रिका के सदृश है जो बिना किसी हेतु के स्वभावतः मुक्त रूप से सर्वत्र शीतलता और अमृत की वृष्टि करती है एवं जो सादृश व्यक्तियों का एक मात्र आश्रय है। गंगानाथ झा परिसर, इलाहाबाद में कार्यरत शैक्षणिक अधिकारियों प्रो० शैलकुमारी मिश्रा, डॉ० विश्वम्भर नाथ गिरि, डॉ० बनमाली बिश्वाल, डॉ० ललितकुमार त्रिपाठी, डॉ० जर्नादन प्रसाद पाण्डेय "मणि", डॉ० अपराजिता मिश्रा एवं डॉ० शैलजा पाण्डेय के प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ, जिनके द्वारा ग्रन्थ के सम्पादन-कार्य में समय-समय पर वैदुष्यपूर्ण परामर्श मिलता रहा। डॉ० बीना मिश्रा एवं डॉ० रामकिशोर झा के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने अपेक्षित हस्तलेख उपलब्ध कराने एवं सम्पादन कार्य में सहयोग प्रदान किया। श्री रामरूप एवं पुस्तकालय में कार्यरत सभी कर्मचारी धन्यवादार्ह है। जिन्होंने ग्रन्थ की भूमिका आदि लिखने में अपेक्षित योगदान दिया।

एकेडमी प्रेस, इलाहाबाद के श्री एस.एम. त्रिपाठी जी भी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होने अनेक व्यवधानों के आने पर भी इस ग्रन्थ का पाठकों के हाथ तक पहुँचा ही दिया।

अन्त में मैं पूज्यनीया माता जी श्रीमती सुखदेवी एवं प्रतीक्ष्य चरण पिता जी श्री मातादीन को शतशः प्रणाम करता हूँ जिनसे जीवन, शक्ति, प्रेरणा और बल मिला तथा प्रति क्षण जीवन के विकास में गहन हार्दिक स्नेह एवं कृपा प्रसाद प्राप्त हुआ। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीला देवी एवं परिवार के सदस्यों का सक्रिय सहयोग भी विशेष उल्लेखनीय है।

इस कार्य में असावधानीवश मुद्रण सम्बन्धी अथवा मेरी अल्पज्ञता के कारण यदि कोई अन्य त्रुटि रह गई हो तो विवेकशील विद्वज्जन उसके प्रति उदार दृष्टि का परिचय देगे, ऐसी मेरी आशा है। 'विष्णुभक्तिकल्पलता' ग्रन्थ विश्वजनों की सेवा में प्रस्तुत है। आशा है यह ग्रन्थ श्रद्धा और भक्ति रखने वाले सर्वजनों की आकांक्षा को पूरा करने वाला होगा।

इत्यलम्।

सम्वत्-२०६७

कार्तिक-शुक्ल पक्ष एकादशी

दिनांक १७-११-२०१०

प्रयाग

विनयानवत

रामचन्द्र

अनुसंधान सहायक

।। अथ श्रीविष्णुभक्तिकल्पलता प्रारभ्यते।।

।। मङ्गलाचरणम् ।।

नृहरिं गिरिजां गिरं गणेशं गुरुपादाब्जयुगं शिवं प्रणम्य।
हरिभक्तिलताभिधेऽत्र काव्ये विवृतिं वच्मि यथामतीशतुष्ट्ये।।

तत्र स्वाभीष्टदेवतावर्णनरूपं विष्णुभक्तिलताख्यं काव्यं विचिकीर्षुः प्रारीप्सित-ग्रन्थनिर्विघ्नपरिसमाप्त्यै शिष्टाचारपरिपालनाय च पुरुषोत्तमः कविराड्विघ्नेशस्मरण-लक्षणमाशीरूपं काव्यमुखं वदति। 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' इत्युक्तेः।

प्रथमः स्तबकः।

अतिसुदृढमगातां हर्षमङ्गैकभावा-
दधिकतममुमेशौ यं तथात्मैकयोगात्।
तदधिकमिव यातौ यं सुतं वीक्ष्यमाणौ
सफलयतु स देवो वः क्रतुं वक्रतुण्डः।।१।।

अतिसुदृढेति। उमेशौ भवानीशङ्करौ अङ्गैकभावाद्देहैक्यादति सुदृढं निबिडं हर्षं सन्तोषमगातां प्रापतुः। तथा आत्मैक्य योगादात्मनोरैक्यादधिकतममत्यधिकं हर्षमागाताम्। यथा यं सुतं गणेशं पुत्रं वीक्ष्यमाणौ विलोकयन्तौ संतौ तदधिकमिवात्मैक्यौ हर्षाधिकं हर्षं यातौ प्राप्तौ। स वक्रतुण्डो गणेशो देवो वो युष्माकं क्रतुं संकल्पं सफलयतु सफलं करोतु। मनोरथसिद्धिं करोत्वित्यर्थः। तुण्डं वक्रमिति हलायुधः। मालिनीवृत्तम्।।

स्फटिकमणिमयाक्षस्त्रक्सुधापूर्णचञ्च-
त्कनककलशवीणापुस्तकान्यादधाना।
सकलविबुधवन्द्या वाङ्मयब्रह्ममूर्ति-
र्मम कमलदलाक्षी देवता सन्निधत्ताम्।।२।।

एवंविधादेवताभारती ममसन्निधत्तां सन्निधानं सामीप्यं करोतु। कीदृशी। स्फटिकमणिमयी या अक्षस्त्रक् जपमाला सुधयाऽमृतेन पूर्णश्चञ्चच्छोभमानः कनक-कलशो हेमकुम्भश्च वीणा बल्लकी पुस्तकं च एतान्यादधाना धारयन्ती। मालाकुम्भौ दक्षिणहस्तयोर्वीणा पुस्तकेवामहस्तयोः। तथा सकलैर्विबुधैर्देवैर्वन्द्या स्तुत्या वाङ्मयं

वाणीरूपं ब्रह्म वेदः तन्मूर्त्तिः। वेदरुपेत्यर्थः। कमलदलाक्षी पुण्डरीकपत्रनेत्रेत्यनेन प्रसन्नत्वम्। प्रसन्ना देवता ध्येया सर्वाभीष्टप्रदायिनी इत्युक्तेः।। एवं सरस्वतीं ध्यात्वा सन्तः स्मरति–

हृदयजलजजाग्रज्योतिरुद्योतितान्तः
करणकिरणरीणाशेषदोषान्धकाराः।
भवदवविवशानां तन्वते येऽभिषेकं
हरिचरितसुधाभिस्तेऽभिनन्दन्तु सन्तः।।३।।

ते सन्तः सत्पुरुषा अभिनन्दन्तु आनन्दं प्राप्तुवन्तु। ते के ये हरिचरित-सुधाभिर्गोविन्दचरितामृतैर्भवदवविवशानां संसारदावानल[१]तप्तानामभिषेकं तन्वते। हरिचरितामृतैः संसारतापं शमयन्तीत्यर्थः। कीदृशास्ते। हृदयजलजे हृत्कमले जाग्रत्प्रकाशमानं यज्ज्योतिर्ब्रह्मतेजस्तेनोद्योतितं प्रकाशितं निर्मलं[२] यदन्तःकरणं तत्किरणैर्रीणाः क्षीणा अशेषाः दोषाः कामादय एवान्धकारो येषां ते तादृशाः।

एवं मङ्गलं विधाय कर्त्तव्यं प्रतिजानीते–

अधिजगति जनानामेक एवास्त्युपायो
विषमतर[३]भवाब्धिं तूर्णमेतं तरीतुम्[४]।
श्रवणमननपूर्वं विष्णुपादारविन्द-
स्मरणमिति तदेतत्प्राच्यते भक्तिलोभात्।।४।।

जगत्यामधि इत्यधिजगतिपृथिव्याम्। 'जगती विष्टपे मह्यां वास्तुछन्दोविशेषयोः' इति विश्वोक्तेः। विभक्त्यर्थेऽव्ययिभावः। विषमतमभवाब्धिं अति दुःसहं संसारसमुद्रं तूर्णं शीघ्रं तरितुं नराणामेक एवोपायोऽस्ति। को वा तमाह– श्रवणमननपूर्वं विष्णुचरणाम्बुजस्मरणमिति। सर्ववेदान्तवाक्यानामद्वैते वस्तूनि तात्पर्यावधारणं। यद्वा हरेर्गुणानां श्रवणपुटैरवधारणं श्रवणं युक्तिभिस्तदेवानुचिन्तनं मननम्। ते द्वे विधाय हरेः स्मरणं तदेतद्भक्तिलोभात्प्रोच्यते कथ्यते।।

विमलयतु मनो मे दूषितं दोषसंघै-
रहरहरिह रम्या रामचन्द्रस्य भक्तिः।

---

१. परितप्तानाम्- ख।
२. निर्मलितं-ख।
३. विषमतम-क।
४. तरितुम्-क।
५. भ्रंषितं-क।

सागरतनयभूतिभ्रेषितं[१] भूमिभागं
सुरसरिदिव दोषप्लोषविख्यातशक्तिः।।५।।

अहरहः प्रतिदिनं रम्या मनोहरा रामचन्द्रस्य भक्तिर्द्दोषसंघैः कामादिसमूहैर्भ्रंषितं[२] मम मनो विमलयतु निर्मलं करोतु। तत्र दृष्टान्तमाह- सगरस्य राज्ञः पुत्राणां कपिलकोपाग्निदग्धानां भूत्या भस्मना [२]भ्रंषितं दूषितं भूमिभागं सुरसरिद्गङ्गेव। दोषाणां पापानां प्लोषे दाहे विख्याता [३]शक्तिर्यस्याः सेत्युभयोरितिविशेषणम्॥

उपनिषदपि लेभे नैव साक्षाद्यदन्तं
न च वचनमनोभिर्योगिनो जग्मिवांसः।
शिथिलितभवबन्धा जन्तवो यस्य नाम्ना
हृदि तमभिनिबद्धं राधयाराधयामः।।६।।

उपनिषद्वेदान्तोऽपि साक्षाद्यदन्तं यस्य विष्णोर्निर्णयं न लेभे न पर्याम[४]। योगिनः सनकादयोऽपि वचनमनोभिर्वाग्भिर्मनोभिश्च यदन्तं न जग्मिवांसो न गताः। ज्ञानन्तु सुतरां दुर्घटमित्यर्थः। गमेः क्वसुः। 'यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इति श्रुतेः। यस्य नाम्ना रामकृष्णेत्युच्चारितेन जन्तवः प्राणिनः शिथिलितभवबन्धाः शिथिलीकृतसंसारजनककर्माणो भवन्ति। राधयागोप्या यद्वा राध्यते आराध्यते अनयेति राधा भक्तिराराधना तया हृदि अभिनिबद्धं मनस्यायातं तं हरिं वयमाराधयामः।।

श्रवणविवरमाप्ता सज्जनानां प्रसङ्गा-
दनयदनयवृत्तीनप्यनेकान्दिवं या।
हृदयविहितवासा मुक्तये कस्य नासा-
दधिभुवनसमर्था जानकीजानिकीर्त्तिः[६]।।७।।

असौ जानकीजानकीर्त्तिः। जानकी जाया यस्य सः जायाया निङ्। रामकीर्त्तिर्हृदय-विहितवासा हृदयेविहित[७] कृतः वासो यस्याः सा हृदये स्थापिता सती कस्य मुक्तये

१. दूषितं-ख।
२. भ्रेषितं-ख।
३. भक्ति-ख।
४. पर्याप्ता-ख।
५. जानकीर्त्तिः-क।
६. जानकीर्तिः-क।
७. विहितः-ख।

न अपि तु सर्वस्यापि मुक्तये भवेत्। अधिभुवनं त्रिलोकेषु सा समर्था। मुक्तिं दातुमिति शेषः[१] या रामकीर्त्तिः सज्जनानां साधूप्रसङ्गात् श्रवणविवरं कर्णमार्गमाप्ता श्रुता सती अनयवृत्तीनन्यायाचारानेकानप्यजामिलादीन् दिवं द्योतमानं वैकुण्ठलोक-मनयत्प्रापयत्।।

अधिहृदयमयं चेद्भाति भर्त्ता रमाया
विषमभवसमुद्रे साधुसेतुः सतां[२] यः।
उपनिषदमुदग्रां यष्टिमादाय हस्ते
कलयतु क इवात्रागाधतां तद्भवाब्धेः।।८।।

चेद्यदि रमायाः श्रियो भर्त्ता हरिरधिहृदयं हृदयं भाति प्रकाशते। यो विषमे भवसमुद्रे सतां भक्तानां साधुः समीचीनः सेतुः। तत्तर्हि उपनिषल्लक्षणामुदग्रां यष्टिं हस्ते गृहीत्वा भवाब्धेरगाधतां गम्भीरतां क इव कलयतु जानातु। न कोऽपि। उपनिषदर्थे विचारिते ब्रह्मणि साक्षात्कृतेऽपि को वा संसाराब्धिं हरिभक्तिं विना तरति न कोपीत्यर्थः।।

श्रुतिभिरतिभिदोक्तौ कौतुकं कुर्वतीभि-
र्हृदय यदयमेवाश्रीयते श्रीनृसिंहः।
तदिह भवभयस्याभावभव्यं[३] भज त्वं
चरणकमलमस्यापास्य नोपास्यमन्यत्।।९।।

हे हृदय! यद्यस्मात् श्रुतिभिर्वेदैरयमेव श्रीनृसिंहएव आश्रीयते प्रतिपाद्यते। ननु ताभिः संसारेभेदः प्रतिपाद्यते कुतो नृसिंहस्तत्राह- अतिभिदोक्तौ भेदाख्याने कौतुकं कुर्वतीभिः। भेदाख्यानं कौतुकेनैव वास्तवं तु हरिप्रतिपादनं श्रुतेः। तत्तस्मादिह संसारेऽस्य हरेश्चरणकमलं त्वं भज। कीदृशं भवभयस्य संसारभीतेरभावे नाशे भव्यं कुशलम्। यत एतदपास्य विहायान्यन्नोपास्यं न सेव्यम्।।

हृदि न यदि नराणां विष्णु[४]पादारविन्द-
स्मरणवशसमुत्थस्नेहयोगातिरेकः।
तदितरपरिचर्य्या जायतेऽर्थाय कस्मै-
कतरगुणकृदद्रौ नीरसे नीरसेकः।।१०।।

---

१. विशेषः-ख।
२. सेनुः-क।
३. भाव्यं-क।
४. विष्णुर्पदारविन्द-क

यदि नराणां हृदि विष्णुपादारविन्दस्मरणवशेनोत्थितस्नेहयोगस्तस्यातिरेक आधिक्यं न तत्तहि इतरपरिचर्य्याऽन्यसेवा कस्मै अर्थाय कार्याय जायते। भगवद्भक्तिं विनाऽन्यसेवा अकिञ्चित्करेत्यर्थः[1]। तत्र दृष्टान्तमाह– नीरसे शुष्के अद्रौवृक्षे जलसेकः कतरगुणकृत् कं गुणं करोति न कमपीत्यर्थः।।

अनुजनुरनुभूयाप्यत्र दुःखं दुरात्म-
न्क्षणमपि हृदिरुद्धः शुद्धचित्तेन साक्षात्।
जलजदलजयिश्री मण्डितोदारनेत्रो
न बत न वतमालः श्यामवर्णो मुरारिः।।११।।

हे दुरात्मन्! अत्रसंसारे अनुजनुः प्रतिजन्म दुःखमाधिव्याधिलक्षणमनुभूयापि क्षणमपि शुद्धचित्तेन निःकपटमनसा कृत्वा साक्षान्मुरारिर्हृदि बत न रूद्धः। कीदृशः। जलजदलजयिन्या श्रीया मण्डिते उदारे नेत्रे यस्य। तथा नूतनमाल। इव श्यामो वर्णो यस्य सस्तथा।।

भवपवनवयस्यानल्पसंकल्पकीला
कृतविलसिततापः प्रौढिमानं निरीक्ष्य।
त्यज हृदय विषादं मा गमः कातरत्वं
तव नवजलदश्री रक्षिता[2] रामचन्द्रः।।१२।।

भव संसार एव पवनवयस्यो वायुसखोऽग्निस्तस्यानल्पाः बहवः संकल्पाः कामा एव कीला ज्वालाः। 'वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलौ' इत्यमरः। तासां विलसितेन प्रसरेणन[3] कृतो यस्तापस्तस्य प्रौढिमानं भूयस्त्वं निरीक्ष्य हे हृदय विषादं त्यज, कातरत्वमधैर्यं च मा गमः। यतो नवजलदश्रीर्नूतनमेघश्यामो रामचन्द्रस्तव रक्षितास्ति। तमाश्रयेत्यर्थः।।

मनसि यदि मुकुन्दः कं दरं मन्द रम्ये-
तरनरकततेस्तच्चिन्तयस्यन्तकाले-
हरिचरणसरोजे जाग्रती याग्रतीर्थं
कलिकलुषमशेषं स्वर्धुनी ते धुनीते।।१३।।

हे मन्द हे मुर्ख! यदि ते मनसि मुकुन्दो हरिरस्ति तत्तर्हि रम्येतरनर-कततेरतिदुःखदायिनी यौद्यादन्तकाले कं दरं त्रासं चिन्तयसि। कमपि मा चिन्तयेत्यर्थः। कथं तत्राह– हरिचरणाम्बुजे जाग्रती या अग्रतीर्थं तीर्थमुख्यभूता स्वर्धुनी गङ्गा ते तवाशेषं सकलं कलिकलुषं पापं धुनीते नाशयतीत्यर्थः। पापोऽपि पापनिवृत्तये मुकुन्दं स्मरन्नरकं न यातीत्यर्थः।

ननु प्रायाश्चित्तं विना कथं पापक्षयस्तत्राह–

चिरममरतरङ्गिण्यादिसत्तीर्थसेवा
व्रतनियमजपा वा ये च दत्तप्रभावाः।
न च सकलसमृद्ध्या साधिता बाधितारः
स्मरणसुकृतलक्ष्मीमध्वरा मध्वरातेः।।१४।।

चिरकालं गङ्गादि सतां तीर्थानां सेवा व्रतानि प्रायश्चित्तानि नियमाः स्नानसन्ध्यादयः जपामन्त्रादीनां सकलसमृद्ध्या बहुधनेन[१] साधिताः सम्पादिता अध्वरा यज्ञा एते दत्तप्रभावाः दत्तप्रभावोफलं यैस्ते ईदृशा अपि मध्वरातेर्मधुसूदनस्य स्मरणसुकृतलक्ष्मीं स्मरणोत्छ[२]पुण्यशोभां न बाधितारो न जेतारः। हरिस्मरणतुल्यं पुण्यं नास्तीत्यर्थः।।

श्रय हृदय रमायाः कान्तमन्यत्र मा या
न धनतनयजायाः श्रेयसां सम्प्रदायाः
व्यवहृतिमदुपायाः [३]सर्वशस्तेऽन्तरायाः
शमनशयगतं को रक्षिता त्वामपायात्।।१५।।

हे हृदय! रमायालक्ष्म्याः कान्तं श्री हरिं श्रय सेवस्व। अन्यत्र मा याः मा गच्छ। या तेर्लुङ्। धनपुत्रस्त्रियः श्रेयसां मङ्गलानां सम्प्रदाया मार्गा न भवन्ति। व्यवहृतिमति व्यवहारयुक्ते संसारे तस्य वा ये उपास्यते सर्वशः सर्वप्रकारैरन्तराया विघ्ना एव। शमनशयगतम्। 'शमनो यमराड्यम' इत्यमरः। शयो हस्तः। यमहस्तगतं त्वामपायान्नरकदुःखात्को रक्षिता न कोऽपि हरिं विनेत्यर्थः।।

शिथिलय भवजालं चिन्तयानन्तयालं[४]
श्रय हृदय दयालुं केवलं नन्दबालम्।
न विधिविदितपारं [५]संहृतक्षोणिभारं
निखिलनिगमसारं ब्रह्म यन्निर्विकारम्।।१६।।

---

१. बहुसाधनेन–ख।
२. स्मरणोत्पन्न–ख।
३. सर्व्वशस्ते–क।
४. चिन्तयाऽनन्तयाऽलं–क।
५. संहत–क।

हे हृदय्! भवजालं संसारबन्ध शिथिलय श्लथं कुरु। अनन्तया बहवया चिन्तया अलम्। चिन्ता न कर्त्तव्येत्यर्थः। केवलं नन्दबालं श्रीकृष्णं श्रय। कीदृशम्। दयालुं दयावन्तम्। न विधिना ब्रह्मणा विदितः पारो यस्य तम्। संहृतो भूभारो येन तम्। निखिलनिगमसारं सर्ववेदोपनिषत्प्रतिपाद्यम्। यन्निर्विकारं मायातीतं ब्रह्मैव तं श्रयेत्यर्थः।।

वसतिरसति विष्णुध्यानयोगे नराणा-
मणि सुकृतपराणामस्ति गर्भे जनन्याः।
हृदि भज तदजस्रं निर्मले कर्म्मलेप
व्यपनयननिमित्तं तं पतङ्गेन्द्रकेतुम्।।१७।।

सुकृतपराणां पुण्यवतां नराणामपि विष्णुध्यानयोगे हरिस्मरणे असत्यविद्यामाने सति जनन्य गर्भे वसतिर्निवासोऽस्ति। तत्तस्मात् हे जीव![1] निर्मले हृदि तं पतङ्गेन्द्रं केतुं गरुडध्वजमजस्रं निरन्तरं त्वं भज। कर्मलेपस्य कर्मबन्धस्य व्यपनयने निराकरणे निमित्तं हेतुभूतम् इति भजने हेतुः।।

त्रिचतुरदिवसान्तर्धानवानेव मृत्यु-
र्नरकभयविमुक्तो विद्यते कोऽत्र जन्तुः।
हृदि तदिह न किं स स्मर्य्यते कंसशत्रुः
स्मरणमपि यदीयं योगयागातिगामि।।१८।।

त्रयश्चत्वारो वा त्रिचतुराः। अचतुरेत्यादिना सूत्रेणाऽच्प्रत्ययान्तो निपातः। त्रिचतुरादिवसान्तर्द्धानमस्यास्तीति। त्रिचतुर दिवसान्तर्द्धानवान्। अल्पदिवसानन्तर-मेवागामी मृत्युः। तर्हि का क्षतिस्तत्राह- अत्र संसारे नरकभयहीनः को जन्तुर्नकोऽपि विद्यते। तत्तस्मादिह संसारे सः कंसशत्रुर्हरिर्हृदि किं न स्मर्य्यते। यदीयं स्मरणं योग यागातिगामि। अष्टाङ्गयोगमश्वमेधादियागं चातिगच्छति। योगयागाभ्यामुत्कृष्टमित्यर्थः।

रसवदपि समस्तं पश्य संसारवृक्षा-
त्फलमविरलदोषं यच्च भूतं भविष्यत्।
व्रजति परिमलायोत्कण्ठिता कं प्रमोदं
मिलितमलितरूण्या पद्ममासाद्य नासा।।१९।।

संसारवृक्षाद्यद्भूतं जातं भविष्यच्च फलं कान्ताकनकादिकं तत्समस्तं रसवत्स्वादुत्तरमपि अविरलदोषं बहुदोषयुक्तं पश्य विचारय। तत्र दृष्टान्तः- नासा नासिका परिमलाय गन्धग्रहणयोत्कण्ठा सती अति तरुण्या ेभ्रमर्य्या मिलितं पद्मं प्राप्य कं प्रमोदं हर्षं व्रजति प्राप्नोति। न कमपि पुनर्भ्रमर्य्याद्दष्टादुःखमेवाप्नोति। तथा

---

१. हे नर-ख।

संसारसुखासक्तिरित्यर्थः।।

भवफणिमणिनारी नेत्रनिध्यानमूर्छ-
ज्जनमनसि न सिद्धिर्यस्य सेवां विहाय।
अयि स हृदि न कस्मात्पन्नगारातिकेतु-
र्भवजलनिधिसेतुः स्मर्य्यते मुक्तिहेतुः।।२०।।

भवः संसार एव फणी सर्प्पस्तस्य मणिस्थानीया नारी तस्य नेत्रनिध्यानं चक्षुरवलोकनं तेन मूर्छन्मुह्यज्जनमनो नरान्तःकरणं तत्र यस्य सेवां विहाय सिद्धिर्नास्ति। अयीतिकोमलामन्त्रणे। हृदि गरुडध्वजो भवाब्धितारको मुक्तिकारणं स हरिः कस्मान्न स्मर्य्यते।।

हरिणचरणमात्रं कामिनीनां प्रतीकं
कमपि कलयतस्ते कोय्योऽगुर्युगानाम्।
परिणति रसवत्ता नैवतत्रानुभूता
प्रथमपदमितस्तद्धेहि मुक्तवा णभाद्यम्।।२१।।

मृगपदप्रमाणं नारीणां प्रतीकं 'अङ्गं प्रतीकोऽवयोऽपधनः' इत्यमरोक्तेः। अङ्गं योन्याख्यं कमप्यनिर्वाच्यं कलयतो ध्यायतस्ते तव युगानां कोटयोऽगुर्गताः[१]। युगकोटिमित कालानुभवेनापि तत्राङ्गे[२] परिणतिरसवत्ता परिपाकस्वादुता नानुभूता। नालं बुद्धिजातेत्यर्थः तत्तस्मादितोऽस्मिन् श्लोके आद्यं णं णकारं हरिचरणचरणेति[३] णकारद्वयमध्ये प्रथमं णं मुक्त्वा प्रथमपदं श्लोकस्याद्यं पदं हरिचरणमात्रदं धेहि चित्ते धारय। दधातेर्लोटि 'ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपएकारश्च[४]।

शमयति भवतन्द्रामस्य नासामृतं द्रा-
गपि न रसनसक्तं कस्य नोद्दामशक्तिः।
किमु न कमनमेनं मानसे तद्रमायाः
श्रयसि पयसि सुप्तं लीलया दुग्धसिन्धोः।।२२।।

अस्य हरेर्नामामृतं द्रागपि मनागपि। रसनसक्तं जिह्वालग्नं सत्कस्य भवतन्द्रां संसारनिद्रां न शमयति। यत उद्दामशक्ति दृढसामर्थ्यम्। तत्तस्माद्दुग्धसिन्धोः पयसि[५] लीलया सुप्तं एनं रमायाः कमनं कान्तं मानसे किमु न श्रयसि किमिति न सेवसे।

---

१. ऽर्युर्गताः-ख।

२. तवाग्रे-ख।

३. हरिचरणेति-ख।

४. लोपकारएकारएकारश्च-ख।

५. पयसा-ख।

अपि तु सेवस्वेत्यर्थः।

दधति मुदमुदारां नाकिवृन्दे नभस्छे
निखिलनृपनृशंसे कम्पमाने च कंसे।
सह सबलभुजैस्तैर्दानवौ रङ्गवाटे-
रमितममितशक्तेर्यस्य वक्तुं न शक्यम्।।२३।।

अमितशक्तेर्बहुसामर्थ्यस्य यस्य हरेः सकलभुजैर्बलवद्बाहुभिस्तैः प्रसिद्धैश्चाणूरादिभिर्दानवैः सह रङ्गवाटे मल्लरङ्गे रमितं क्रीडितं वक्तुं न शक्यम्। क्व सति[१], नभस्छे आकाशगते नाकिवृन्दे देवसमूहे उदारां महतीं मुदं हर्षं दधति सति। तथानिखिलनृपनृशंसे सकलराजधातुके कंसे कम्पमाने सति।।

तमिह किमु रमाया वल्लभं मल्लभङ्गो-
त्सवभवदवलेपोत्पत्तिजेतारमन्तः।
स्मरसि न विनयानुस्यूतसूक्तामृतौघैः
स्तुतमतुलयशोभिः शोभिवृन्दैः सुराणाम्।।२४।।

इह संसारे तं रमायाः[२] वल्लभमन्तश्चित्ते किं न स्मरसि। कीदृशम्। मल्लानां भङ्गेन उत्सवस्तस्माद् भवन्ती या अवलेपोत्पत्तिर्गर्वोत्पत्तिस्तस्या जेतारम्। मल्लभङ्गेनापि गर्वहीनम्। तथा अतुलयशोभिनिरूपमयशोन्वितैः सुराणां शोभिवृन्दैः शोभमानसमूहैः कर्तृभिर्विनयेनानुस्यूता संवद्धा ये सूक्तौ मृतौघाः सुवचनसुधासमूहास्तैः कृत्वा स्तुतम्।।

सुकृतमकृत किं किं चित्रमासर्गकाला-
दहह सपरिवारो नन्दगोपश्च नैनः।
इह विहितहितश्रि प्रत्तमुक्त्यच्युत त्वां
फलमलभत यस्माद्बन्धुरं बन्धुरत्नम्।।।२५।।

अह हेत्याश्चर्ये। सपरिवारो नन्दगोप आसर्गकालात्सृष्टिकालमारभ्य चित्रमाश्चर्य्यकारि किं किं सुकृतं पुण्यमकृत। एनः पापं च नाकृत। हे[३] अच्युत! विहिते हितश्रियौ येन तत् [४]हितकारिसम्पद्दातृ। प्रत्ता दत्ता अर्थाद्भक्तानां मुक्तिर्येन तन्मुक्तिदम्। बन्धुरं मनोहरं त्वां बन्धुरत्नं त्वल्लक्षणं बान्धवश्रेष्ठं फलं यतोऽलभत प्राप। पुण्यं विना हरिपितृत्वं कथं स्यादिति। नन्दस्यपुण्यं नानाजन्मगतमनुमीयत इत्यर्थः।

---

१. क्व वसति-ख।
२. माया बल्लभं-ख।
३. इह अच्यूते-ख।
४. कारां सम्पदां-ख।

विधिरतनुत मर्त्त्यान्मुक्तिमार्गोपरोधो-
द्धुरतररजसादौ तेन मे राजसीयम्।
स्फुरदमरसरित्वत्पादपद्मावगाहा-
द्भवतु हृदयवृत्तिर्नीरजा नीरजाक्ष।।२६।।

विधिर्ब्रह्मा मर्त्त्यान्मनुष्यान्मुक्तिमार्गस्योपरोधे प्रतिबन्धे उद्धुरतरं समर्थतरं यद्रजो रजोगुणस्तेन सृष्ट्यादानवतनुतासृजदातेन रजोगुणसृष्टत्वेन राजसी रजोगुणप्रधाना मे मम हृदयवृत्तिर्हे नीरजाक्ष! कमलपत्रनेत्रस्फुरन्ती [१]सुरसरिद्गङ्गायस्मिन्नेवविधस्य त्वत्पाद-पद्मस्यावगाहान्नीरजा[२] निर्मला भवतु। रजस्वलं जलावगाहान्निर्मलं भवतीत्यर्थः।।

यदहमदहमुक्त्यानिष्टया हृज्जनानां
चकर च करपातं यत्परस्वे प्रमत्तः।
श्रुतिपथिपथिको यन्नाभवं तन्मुरारे
मम समभिसहस्वादीनवं दीनबन्धो।।२७।।

अनिष्टयोक्त्या अप्रियवचनेन जनानां हृच्चित्तमहं यददहं दग्धवानस्मि। यच्च प्रमत्तः सन्[३] परस्वे परधने करपातं हस्तसंचारं चकरकृतवानस्मि। 'णलुत्तमो वेत्ति वृद्धभावे गुणः। यच्चश्रुतिपथपथिको वेदमार्गचारी नाभवं न भूतः। हे मुरारे, हे दीनबन्धो! मम तमादीनवं दोषं समभिसहस्व क्षमस्व। दोष आदीनवो मतः।।

भवजलनिधिमध्ये हर्षसंघर्षतर्ष-
प्रमुख विषमवीचिव्याकुलं वीक्ष्यविष्णो।
चरणकमलनावं भावगम्यां मुनीन्द्रै-
रपि सदयतया मे यच्छ यच्छ प्रसीद।।२८।।

संसारसमुद्रमध्ये हर्षः सन्तोषः संघर्षः स्पर्द्धा तर्षतृष्णा तत्प्रमुखास्तदादयो या विषमा बीचय ऊर्म्मयस्तैर्व्याकुलं मां वीक्ष्ये हे विष्णो! मुनीन्द्रैरपि भावगम्यां चरणकमललक्षणां नावं सदयदया[४] मे यच्छ यच्छ देहि देहीति। प्रसीद। तस्मात्प्रसन्नो भवः अत्यातुरया वीप्सा। समुद्रे मज्जतो नौरेव तारिका।।

स्फुरितसरितमातन्वानमानन्दमुच्चैः
सपदि सुपदपद्मं प्राप्य कृष्ण त्वदीयम्।

---

१. अमरसरित्गङ्गा-ख।
२. नीरजनीर्मला- ख।
३. अनवहितोऽहं परस्वेऽन्यधने विषये करयातं प्राणि संसारं-ख।
४. सदयतया- ख।

दुरितभरितमेतन्मामकं देव चेतो
विमलितमलमस्तु प्रस्तुतत्वत्सपर्य्यम्।।२९।।

स्फुरिता सरिद्गङ्गा यस्मितम्। उच्चैरतिशयेनानन्दमातन्वानं विस्तारयन्तम्। हे कृष्ण हे देव! त्वदीयं शोभामानं[1] पादपद्मं प्राप्य सपदि एतन्मामकं दुरितभरितं[2] पापाक्रान्तं चेतः प्रस्तुता त्वत्सपर्य्या भवत्पूजा येनेदृशं[3] सद्विमलितमलमस्तु निर्मलं भवतु।।

दमय मम यतीन्द्रध्येय चेतः प्रभूता
पदमपि यदवेत्य प्रेत्य [4]दुर्गत्यवच्छम्।
सरभसमसदुच्चैराचरन्नैति भीतिं
तदव यदवलम्बः संसृतौ न त्वदन्यः।।३०।।

हे यतीन्द्रध्येयसनकाद्यैश्चिन्तनीय! मम चेतो दमयं। यद्यस्मादसद्दुष्टमाचारन्नपि नरः प्रेत्य मृत्वा प्रभूतापदं बहुविपत्तियुक्तामपि दुर्गत्यवच्छां नरकयातनामत्यवेत्य ज्ञात्वापि भीतिं नैति न प्राप्नोति। दुष्टाचारो नरकभयं श्रुत्वापि न विभेतीत्यर्थः। तत्तस्मादव रक्ष। यतः संसृतौ संसारे त्वदन्योऽवलम्ब आश्रयो नास्ति।।

त्वदपि भुवनमध्ये को वदान्यो वदान्यो
नहि परपरिलभ्य्यं देव विश्वं भरत्वं।
इदमहमभियाचे तद्विहाय त्वदङ्घ्री
क्वचर चरतु चेतो मामकं मा मुकुन्दा।।३१।।

हे मुकुन्द! भुवनमध्ये त्रैलोक्ये त्वदन्यः को वदान्यः त्वं वद। वाक्यार्थस्य कर्मत्त्वम्। 'प्रियवाग्दानशीलश्च वदान्यः परिकीर्त्तितः'। हे देव! विश्वंभरत्वं परपरिलभ्यं अन्यप्राप्यं नहि। तत्तस्मादहमिदमभियाचे[5]। मामकं चेतः त्वदङ्घ्रि विहाय क्वचन मा चरतु मा यातु।।

शमय मम यमस्य त्रासमत्रासमाना
पदि सपदि हृदि त्वं कृष्ण तिष्ठन्निमेषम्।

---

१. शोभनम्- ख। २. दुरितचरितं- ख।
३. येन तादृशम्-ख। ४. दुर्गत्यवस्थाम्-क।
५. याते-ख। ६. भीति- क।

जगति न गतिरन्या त्वां विना क्वापि धन्या
प्रभवति भवतिग़्माभील[६]निर्मीलनाय।।३२।।

हे कृष्ण! असमानापदि अनुपमपीडेऽत्रास्मिन्मम हृदि सपदि निमेषं तिष्ठन् यमस्य त्रासं शमय यतो जगति भवतिग्माभीलनिर्मीलनाय संसारस्य तीव्रभयोन्मूलनाय त्वां विना अन्या धन्या श्रेष्ठा गतिरूपायो न प्रभवति।।

अव भवदवदौःस्थादिन्दिरालोचनेन्दी-
वरमधुरतरश्रीसङ्गरङ्गदृगंशम्।
मयि सदय निधायानन्त यद्योगजाग्र-
न्मुदतिशयवशात्मा न स्मराम्येव किञ्चित्।।३३।।

हे सदय! हे अनन्त! इन्दिराया लक्ष्म्या लोचनेन्दीवरस्य नेत्रकमलमधुरतरा रम्या या श्रीः शोभा तस्याः सङ्गेन रङ्गन् क्रीडन् यो दृगंशः कटाक्षस्तं मयि निधाय भव दवदौच्छात् संसारदावानलदुःखादव रक्ष। यद्यतोऽवनेन योगेन जाग्रत्स्फरन्यो मुदतिशयो हर्षवेगस्तद्वशात्मा सन् किञ्चिन्न स्मराम्येव।।

एततमहितहेतुं हन्तु हन्तुर्मधोर्वः
सकलसुकृतसारः पादपद्मोपचारः।
भवति हृदयशुद्धा मानवो यद्विधाना-
द्दलितदुरितभारः प्राप्तसंसारपारः।।३४।।

[१]सकलसुकृतानां मध्ये सारभूतो मधोर्हन्तुर्मुरारे पादपद्मोपचारश्चरणाम्बुजसेवनं सततं वो युष्माकमहितहेतुं दुःखकारणीभूतं पापं हन्तु नाशयतु। चित्तशुद्धाय द्विधानान्मानवो[२] दलितदुरित[३]नष्टपापपुञ्जः सन्प्राप्तसंसारपारो भवति।।

मधुरिपुपदलग्नं चित्तमार्यस्य हर्त्तुं
कथमपि न समर्था दस्यवो दर्पकाद्याः।
सुमतिबलिविमुक्तं शक्नुवन्ति प्रमार्ष्टुं
किमु हरिकरमध्याद्दानवा दानवारि।।३५।।

---

१. सकृतसुकृतानां-ख।
२. द्विधानात् यस्य पादपद्मोपचारस्य विधानात्-ख।
३. दुरितभारो-ख।
४. कोऽनङ्ग कामं पञ्चशरः-ख।

दर्पकाद्याः कामद्याः दस्यवो वैरिण आर्य्यस्य पुण्यवतो नरस्य हरिपदसक्तं fp Ûka gÛkg d Fle fi u le FkZA ^d Uhikaid kguõ %[4]' इत्यमरः। तत्र दृष्टान्तमाह शोभनमतिर्यो वलिस्तेन विमुक्तं श्री हरिकरे। अर्पितदानवारि दानोदकं हरिकरमध्याद्दानवाः fd aiek'gfujkd Ùkg'kDuqfLrA oleugLrkÍkulad acfy nत्तं यदा सा दैत्या नापहर्त्तुं शक्तास्तद्वदित्यर्थः।।

दशशतदलपद्मं यस्य तच्छत्रमुच्चै-
र्वरचमरमहेला पिङ्गलेला च पुण्या।
अनपरपरिमुक्तं भाति भद्रासनं [1]त-
त्हृदयकमलमेकं सार्वभौमः स जीयात्।।३६।।

तत्प्रसिद्धं द्वादशान्तःस्थं सहस्रदलपद्मं यस्योच्चैः छत्रं। पुण्या पवित्राइला पिङ्गला च नाडी वर चमरमहेला। चामरधारिणी स्त्री। 'अबला महेला ललनेति कोशः'। अनन्यपरिभुक्तं सत्श्रेष्ठं हृदयकमलमेकं यस्य सिंहासनं भाति स सार्वभौमश्चक्रवर्त्ती जीयात्।।

सुरभिखुरभिदाभृत्भूतलोद्धूतधूली
धरममरमहेलामोहबाहुल्यहेतुम्[2]।
अमृतकरमुखीनां वल्लभो वल्लवीनां
दधदवतु वपूर्वः कायभाजामपूर्वः।।३७।।

सुरभीणां धेनूनां खुरैर्भिदां विभर्त्ति एतादृशं यद्भूतलं तस्मादुद्भूतायाः धूली तद्धारकममरमहेलानां[3] स्वर्गस्त्रीणां मोहवाहुल्ये हेतुभूतं वपुर्दधत्। अमृतकरमुखीनां चन्दवदनानां वल्लवीनां गोपीनां बल्लभः। कायभाजां शरीरिणामपूर्वो मुख्यो हरिर्वो युष्मान् अवतु रक्षतु।।

नयनकमलयुग्मछत्रभृद्यत्रनासा
करनखरमरीचिप्रस्फुरच्चामरश्रीः।
अधरमधुरतायाः सार्वभौमोमुरारे-
र्जगति जयति वंशो विश्वविश्वैकवन्द्यः।।३८।।

यत्र वंशे नासादण्डो नयनकमलयुग्ममेवच्छत्रं विभर्त्ति तादृशः। हस्तनखानां

---

१. सत्- क।
२. हेतो- क।
३. महिलानां-ख।
४. ओष्टमाधुर्यस्य-ख।

मरीचयः किरणा एव प्रस्फुरन्ती चामरश्रीर्यस्यसः। विश्वं सर्वं यद्विश्वं जगत्तस्यैकवन्द्यो-ऽसाधारणस्तुत्योऽधरमधुर्तायार्तुष्टमाधुर्यस्य[४] सार्वभौमो राजा माधुर्यग्राहको मुरारेर्वंशो जगति भूतले जयति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते।।

चरणकमललीला बालगोपालमूर्त्ते-
र्जयति रुचिभिरिभ्या निर्भराभ्यासलभ्या।
शकटतनुमनूनं वज्रतः कर्कशत्वा-
च्छतशकलमकार्षीद्या सुमृद्वी सुरारिम्।।३९।।

इति श्री"विष्णुभक्तिकल्पलतांख्ये" कवि श्रीपुरुषोत्तमकृतौ
"भक्त्युद्भवोनाम"[५] प्रथमः स्तबकः।।

बालगोपालमूर्त्तेः पादपद्मलीला अत्यन्ताभ्यासप्राप्या कान्तिभिरिभ्या आढ्या जयति सुतरां मृद्वी कोमला या कर्कशत्वात्काठिन्येन व्रजतो व्रजादनूनं वज्रसदृशं शकटतनुं शकटशरीरं मुरारिं दैत्यं शतशकलं शतखण्डमकार्षीत्कृतवती। करोतेर्लुङ्रूपं। 'शकटासुरभञ्जनः' इति पुराणात्।

इति श्री महीधरकृते विष्णुभक्तिकल्पलताविवरणे 'भक्त्युद्भवो' नाम प्रथमः स्तबकः।।

द्वितीयः स्तबकः।

अव्यादवाङ्मनसगोचररूपशीला
लीलावती यतिहृदम्बुजराजहंसी।
एषा ललाटफलकार्पितचन्द्रलेखा
शेषाहिशायिभगिनीदुरितादशेषात्।।१।।

वाङ्मनसयोरगोचरमविषयं रूपं शीलयति धारयती तादृशी। लीलायुक्ता यतीनां हृत्कमले राजहंसी। ललाटपट्टेऽर्पिता चन्द्रलेखा यया सा। शेषनागशायिनो हरेर्भगिनी दुर्गा अशेषात्समग्राद्दुरितात्पताकादव्यात् रक्षतु। 'नन्दगोपकुले जातेति' मार्कण्डेयोक्तेः। 'वसन्ततिलकावृत्तम्'।।

यन्निमेषमपि रे वृषं विना
वर्त्तसे मिथुनभावतोषितः।
कर्कशत्वमिदमात्मनि स्फुटं
पश्य सिंहमिव मृत्युमुद्धतम्।।२।।

रे जन्तो, निमेषमपि मिथुनभावेन स्त्रीसंयोगेन तोषितः सन्यद्वृषं विना धर्महीनो वर्त्तसे इदं धर्महीनत्वमात्मनि कर्कशत्वं स्वस्यैव दुःखदायित्त्वं। यत् उद्धतं सिंहमिव स्फुटं प्रगटं मृत्युं पश्य। रथोद्धतावृत्तं। 'शन्नराविह रथोद्धतालगौ' इत्युक्तेः।।

श्री गोपालाय गुरवे नमः।।

कन्यकावसुतुलादिदानतो
यद्यसह्यभववृश्चिकव्यथा।
[1]नैवशाम्यति ततो बलिष्ठया
रामनामसुधयास्व सुस्छितः[2]।।३।।

यदि यतः कन्याकनकतुलादिदानेनापि असह्यासंसाररूपवृश्चिकपीडा नैव शाम्यति ततो बलवत्या रामनामरूपसुधया सुस्छितः आस्व तिष्ठ। आस्तेर्लोटि मध्यमैकवचनम्।।

---

१. नैवर्शम्यति-क।

२. सुस्थितः-क।

रामनामधनुषा भवाभिधं
भिन्द्धि रे मकरमन्यथात्मकम्।
कुम्भमध्यगतमीनवद्दशा-
मेति कामिह न[1] हाग्रहाकुलः।।४।।

रे जन्तो! अन्यथात्मकं मिथ्यास्वरूपं स्वप्नप्रायं भवाभिधं संसाररूपं मकरं ग्राहं रामनामरूपेण धनुषा भिन्द विदारय। ह स्फुटं इहाग्रहेण संसाराग्रहेणसक्तया आकुलो व्यग्रः कुम्भमध्यगतमीनतुल्यां कां दशामवस्थां नैति न प्राप्नोति अपितु प्राप्नोति। दुःखमेवानुभवतीत्यर्थः।।

अस्तमेति दिवसात्पये रवि-
श्चन्द्रमा अपि विशेषतः क्षयी।
मङ्गलोपरि मनः कयाशया
तत्करोति जगतीतले बुधः।।५।।

रविर्दिवसान्तेऽस्तं याति। चन्द्रोऽपि विशेषतः क्षयवान्। चन्द्रसूर्ययोरपि विपदं दृष्ट्वा जगतीतले बुधो मङ्गलोपरि कल्याणप्राप्तौ कया तृष्णया मनः करोति।। भवानीशङ्कराभ्यां नमः।

जीव पीवरमथेतरद्वपुः
शुक्रशोणितसमुद्भवं सदा।
प्राप्यमेव हि परं शनैश्चर-
भ्रातृभूतभयभेषजं भज।।६।।

हे जीवजन्तो! पीवरं स्थूलं हस्त्यादिक मथेतरत्सूक्ष्मं मशकादिकं वपुः शुक्रशोणितजातं सदा प्राप्यमेव हि यतः। अतः परं केवलं शनैश्चरः भ्रातुर्यमस्यभूतेभ्यो यमदूतेभ्यो यद्भयं तत्भेषजं तन्निवर्त्तकं हरिं भज सेवस्व।।

राहुणा यदिव रोहिणी पति-
[2]र्ग्रह्यसे नहि लुलायुकेतुना।
तावदेव कुरु यत्नमच्युता
राधने धनधियं धिगन्ध ते।।७।।

राहुणाचन्द्रइव लुलायुकेतुना महिषध्वजेन यमेन यावन्न गृह्यसे। 'ग्रस्यसे' इति वा पाठः। तावदेवाच्युताराधने हरिभजने यत्नं कुरु। हे अन्ध! ते तव बुद्धिं धिक् तां मा कार्षीरित्यर्थः।।

१- कामिहहनग्रहाकुलः -क
२- गृह्यसे-क।

अष्टमी भव तनुर्महेशितुः
कैटभारियजनाय यत्नतः।
यौवनेऽसि नवमीनकेतनः
किं त्वमत्र दशमी करिष्यसि।।८।।

हे जन्तो! यत्नतः कैटभारेर्हरेर्यजनाय महेशितुः शिवस्याष्टमी तनुर्दीक्षितोभव। 'पञ्चभूतानि सोमार्कौ यज्वेत्यष्टामूर्त्तयः' इत्युक्तेः। 'भूतेन्दुसूर्ययज्वानः शङ्करस्याष्टमूर्त्तयः' इति च। यौवने नवो नूतनो मीनकेतनः कामो यस्य इदृशोऽसि। अत्र संसारे दशमीवृद्धः सन्किं करिष्यसि। जरायां शरीरासमर्थ्यात्। 'वर्षीयान्दशमीज्यायानित्यमरः'। दशमो अवस्छाविशेषो यस्येति क्षीरस्वामी।।

अय्यनेकविधिवेदनाकुले
मातृकुक्षिकुहरे कृतौकसः।
आमनस्यमपि ते मनस्यहो न प्रकाशमुपयाति किंनु तत्।।९।।

अयीति सम्बोधने! हे जन्तो! अनेकविधाभिर्वेदनाभिराकुले व्याप्ते मातृकुक्षिकुहरे जननीजठरविवरे कृतौकसौ विहितनिवासस्यापि ते तव मनसि आमनस्यं प्रसवजनितदुःखं प्रकाशं नोपयाति न स्फुरति। अहो आश्चर्य्यं किंनु तत्। 'आमनस्यं प्रसूति जमित्यमरः'।।

बुद्धिरस्ति यदि विष्णुयोगिनी
तद्भयं किमिह कालपाशतः।
मेरुमौलिरमरापगाप्लवो
दह्यते किमु दवेन वह्निना।।१०।।

यदि बुद्धिर्विष्णुयोगिनी हरियुक्तास्ति तत्तर्हि इह संसारे कालपाशतो भयं यमयातनाभीतिः किम्। न किमपीत्यर्थः दृष्टान्तमाह- अमरापगायाः गङ्गाया आप्लवः प्रवाहो यस्मिनीदृशो मेरुमौलिर्दवेन वह्निना दावानलेन किमु दह्यते नेत्यर्थः।।

सिद्धिरस्ति सुकुतानुसारतः
सारतर्कसुहृदेष निर्णयः।
अर्जितव्यमनिशं यशोधनं
शोधनं यदतुलापराधतः।।११।।

सुकृतस्य पुण्यस्यानुसारेण सिद्धिरस्तीत्येष निर्णयः सिद्धान्त सारतर्कसुहृत्समीचीनस्य तर्कस्य सहायोऽनुसारीत्यर्थः। तत्स्वरूपमाह-यत् समग्रापराधानां शोधननाशकं तद्यशोलक्षणं धनमनिशं निरन्तरमर्जितव्यम्। सुकृतेनैव यशो भवतीत्यर्थः।।

अर्ज्जुनीयति यदर्ज्जने जनो
वर्ज्जनीयजनसेवनादिभिः।

मङ्क्षु नश्यति चिराय सञ्चिता
वञ्चिता जगति के न संपदा।।१२।।

यदर्ज्जने यस्याः सम्पदः अज्जने वर्ज्जनीयानां कुत्सितानां जनानां सेवनादिभिर्जनोऽर्ज्जुनीयति तृष्णतुल्यो भवति। कुत्सितानुसरणेन लाघवं यातीत्यर्थः। 'अर्जुनं च तृणे नेत्ररोगेऽर्ज्जुनः पार्थे च हैहये। केकिनिद्रुमे इति कोशः। अर्ज्जुनमिवाचरति। 'उपमानादाचारे' इति क्यच्। क्वचि चेतीत्वम्। चिराय सञ्चिता मङ्क्षु शीघ्रं या नश्यति तया संपदा जगति के नरा न वञ्चिता। सर्वेऽपि तदाशक्त्या वञ्चिता इत्यर्थः।।

भा [1]रतीशितुरिवास्तु विग्रहे
भारती भवतु वाक्यतेरिव।
भारतीह सकलोऽपि तद्गुणो
यस्य भक्तिभक्तिरचला न माधवे।।१३।।

विग्रहे शरीरे रतीशितुः कामस्येव भा कान्तिस्तु। वाक्पतेर्गुरोरिव भारतीवाग्भवतु। परन्तु यस्य माधवे निर्मला भक्तिर्नास्ति। सकलोऽपि कान्तिपाण्डित्यादिः तस्य गुणो भारती भार इवाचरति। 'सार्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विबाचारे' इति क्विप्।।

जीवितव्यमतिमात्रचञ्चलं
यादृशं [2]कमलनीदले जलम्।
तद्विधाय हृदयं सुनिर्म्मलं
चिन्तयस्व हरिमेव केवलम्।।१४।।

पद्मिनीपत्रे यादृग्जलं तादृग्जीवितव्यमतिचञ्चलं। तत्ततो हृदयं निश्चलं कृत्वा केवलं हरिमेव चिन्तयस्व।।

योनियन्त्रणविधा न वेद ना
लीलयेन्द्रियचयस्य खेलतः।
योनियन्त्रणविधानवेदनाः
का न काः स सहते हतेप्सितः।।१५।

लीलया स्वेच्छया खेलतः प्रचरत इन्द्रियचयस्य नियन्त्रणविधाः नियमप्रकारान् यो ना पुरुषो न वेद न जानाति स नरो हतेप्सितो नष्टमनोरथः सन् काः काः यो नौ यन्त्रणविधानं बन्धनं तज्जनिता वेदनाः पीडा न सहते। अपि तु सर्वयोनिनिवासव्यथाः सहत इत्यर्थः।।

---

१. भा रतीशतुरिवास्तु-क।
२. कमलिनी-क।

तं धिगन्धमिह यस्य रामतो
रा मतोऽधिककदर्थनावहः।
एकवारमपि यस्य नामतो
धाम तोषकरमेति तत्परम्।।१६।।

अधिकां कदर्थनां दुःखमावहति प्रापयति तादृशो रा धनं रामतो हरेः सकासाद्यस्य मतोमान्यः। अभिसर्वतसोरिति द्वितीया। 'राः स्वर्णे जलदे धने' इत्यमरः। रामस्यगुणमाह-एकवारमपि यस्य नाम्ना तत्परं तत्प्रसिद्धं परं केवलं तोषकरं सन्तोषप्रदं धाम ब्रह्मपदमेति।।

क्लेशवारणसमर्थता भवे
केशवादपि परस्य किं भवेत्।
यं नमन्नपि सुरेषु गौरवं
याति पातकिजनो न रौरवम्।।१७।।

भवे संसारे केशवात्परस्याप्यन्यस्यापि क्लेशस्यवारणे सामर्थ्यं किं भवेन्न भवेदेव। पातकिजनोऽपि यं केशवं नमन् सुरेषु देवेषु गौरवं पूजां याति प्राप्नोति न तु रौरवं नरकम्।

यस्य चेतसि न जातु कंसहा
कं [1]सहायमयमेति मानवः।
कालकिङ्कर करान्तरं गतो
रङ्गलो गलितयौवनः [2]स्त्रियाः।।१८।।

यस्य चित्ते जातु कदाचित्कंसहा श्रीकृष्णो न अयं मानवो इह लोके स्त्रिया रङ्गतः क्रीडया गलितयौवनोऽमुत्र यमदूतहस्तमध्यं प्राप्तः सन् कं सहायमेति। न कमपि इत्यर्थः।।

रामनाममहिमा महोत्सवं
यस्य चेतसि तनोति न श्रुतः।
तस्य जीवितमिवावकेशिनो
भूमिभारकरणाय केवलम्।।१९।।

रामनाम्नोमहिमा श्रुतः सन्यस्य चेतसि महोत्सवं न तनोति तस्य जीवितं केवलं भूमिभारकरणाय कस्येव। अवकेशिनो निष्फलवृक्षस्येव। बन्ध्योऽ-

---

१. साहाय

२. यौवनत्श्रिया-क

फलोऽवकेशीत्यमरः।।

न क्रिया समभिहारविक्रिया-
जातपातकमपोहितुं विधिः[१]।
वासुदेव वारिवस्यया विना
या विनाशयति सर्वमप्यघम्।।२०।।

क्रिया ज्योतिष्टोमादिः वासुदेववरिवस्यया हरिपूजया विना समभिहारेण पौनःपुण्येन या विक्रिया क्रोधकामादिस्तज्जातं पातकमपोहितुं निराकर्त्तुं न विभुर्न समर्थाः। या वासुदेवस्य वरिवस्या पूजा सर्वमप्यघं पापं विनाशयति।।

मन्द रे भव कदापि मायया
मा यियासुरिह मातृकुक्षिषु।
प्राप को न भवकाननं गतो-
ऽनङ्गतो मृगपतेः पराभवम्।।२१।।

रे मन्द! इह संसारे मायया कृत्वा कदापि मातृकुक्षिषु जननीजठरेषु यियासुर्गन्तुमिच्छुर्मा भव। संसारे सा न कर्त्तव्या इत्यर्थः। तत्र हेतुमाह- भवकाननं संसारवनं गतः को नरोऽनङ्गतो मृगपतेः कामसिंहात्पराभवं न प्राप। अपि तु सर्वोऽपि कामेन पराभूत इत्यर्थः।

दुर्लभं जनुरवाप्य मानुषं
मानुषङ्गमिहि कालतो मृषा।
रामचन्द्रचरणारविन्दयो-
र्विन्द योगिजनजीवनं युगम्।।२२।।

रे जन्तो! दुर्लभं मानुषं मनुष्यसम्बन्धि जन्म प्राप्य मृषा मिथ्या कालतः कालेनानुषङ्गं सम्बन्धं मा इहि मा गच्छ। मृत्युसम्बन्धं मा प्राप्नुहीत्यर्थः। ततः किं विधेयमत आह- रामचन्द्रचरणकमलयोर्युग्मं योगिजनानां जीवनमाधारभूतं विन्द लभस्व। 'विद् लाभे' शेमुचादिनामिति नुम्।।

रामचन्द्रचरणौ सुकोमलौ
को मलौघमिलिताशयोऽपि सन्।
न स्मरन्विमलतामुपागतो
या गतोऽधिकनमस्क्रियौ हि यौ।।२३।।

मलौघेन पापसमूहेन मिलितः सम्बद्धः आशयश्चित्तं यस्य स तादृशो महापापोऽपि सत्सुतरां कोमलौ रामचन्द्रचरणौ स्मरन्कः पुमान्विमलतां निष्पापत्वं नोपागतः। अपि

---

१. विभुः-क।

तु सर्वोऽपि निष्पापो जातः। हि यतोर्हेतोर्यौ पादौ यागतोऽश्वमेधादेरधिकनमस्क्रियौ अधिकायागाधिकफलदात्री नमस्क्रिया ययोस्तौ। एतदुक्तं- 'एकोऽपि कृष्णस्यकृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेरतुल्य' इति।।

सेवितैव भुवि तर्हि गोमती
गोमती यदि मुकुन्दमाश्रिते।
यस्य सेवनमपास्य सारवं
सारवन्न जलमप्यघापहम्।।२४।।

यदि गोमती वाग्बुद्धी मुकुन्दं हरिमाश्रिते तर्हि भुवि गोमती नदी सेवितैव। हरिभजनं विना तीर्थं व्यर्थमित्यर्थः। तदेवाह- यस्य हरेः सेवनमपास्य त्यक्त्वा सारवत्सारयुक्तं श्रेष्ठं सारवं सरयूसम्बन्धिं जलमपि नाघापहं न पापहृत्। सरय्वा इदं सारवम्।

तत्कथं मधुरिपोरनाविलं
नाविलम्बमवलम्बसे पदं।
यत्समेत्य किल काञ्चनापदं
नाप दम्भमतिरप्यहो जनः।।२५।।

तत्तस्मादनाविलं निर्मलं मधुरिपोः पदमविलम्बं यथा तथा कथं नावलम्बसे ना श्रयसि। अहो आश्चर्ये। दम्भमतिर्दाम्भिकोऽपि जनो यद्धरिपदं समेत्य प्राप्य काञ्चनापदं किमपि दुःखं नाप न प्राप। किलेति श्रुतौ।।

किं गतेन गुरुतापसे वने
सेवने कुरु मतिं मधुद्विषः।
आत्मसान्न कुरुते हि कं सवं
कंसवंशवधकृन्नतेर्नरः[1]।।२६।।

गुरवः श्रेष्ठास्तापसा यस्मिन्वने तत्र गतेन गमनेन किम्। मधुद्विषो हरेः सेवने मतिं कुरु। हि यतः कंसवंशवधकृन्नतेः कंसान्वयनाशकस्य हरेर्नमस्काराद्धेतोर्नरः कं सवं यज्ञमात्मसादात्माधीनं न कुरुते। हरिचरनत्यैवाश्वमेधादि फलप्राप्तौ किं वनगमनेनेत्यर्थः।।

अस्ति कामविषयेऽथवा मति-
स्तत्परोऽयमुपदेश उच्यते।
पद्मनाभपरिचर्य्यया परं
तं निशम्य हृदये कुरुस्थिरं।।२७।।

१. तेर्नरः-क।

ते कामविषये मतिरस्ति तर्हि तत्परः कामविषयोऽयमुपदेशः कथ्यते। तमुपदेशं परमुत्कृष्टं मोक्षविषयं निशम्य श्रुत्वा वेदान्त श्रवणेनावधार्य पद्मनाभपरिचर्य्यया हरिसेवया हृदये स्थिरं कुरु। मोक्षातिरिक्तं कामं मा कार्षीरित्यर्थः।।

केवलं कलय नन्दनन्दनं
नन्द नन्दनगतश्चिराय च।
सेवितो विबुधवल्लभाजनै-
र्भाजनैः सपदि सर्वसम्पदाम्।।२८।।

केवलं नन्दनन्दनं हरिं कलय ध्यायस्व। 'कल संख्याने गतौ चेति'। धातुरदन्तश्चुरादिः। ततः सर्वसम्पदां भाजनैः पात्रभूतैर्विबुधवल्लभभाजनैर्देवस्त्री-समूहैरुर्वश्यादिभिः सेवितो नन्दनगतो देवोद्यान स्थितश्चिराय नन्द क्रीड।।

चक्रपाणिचरणार्चनादरो
ना दरोज्जितमना यमादपि।
विष्टपे भवति दुष्टशासिता
भासिताखिलदिगन्तरः श्रिया।।२९।।

चक्रपाणिचरणार्चने हरिपादपूजने आदरो यस्य स ना पुमान् ईदृशो भवति। विशेषणैः सेवनफलमाह- यमादपि दरेण त्रासेनोज्झितं त्यक्तं मनो यस्य। विष्टपे लोके दुष्टानां शासिता नियन्ता। तथा श्रिया भासितान्यखिलानि दिगन्तराणि येन। जगद्व्यापिकीर्त्तिरित्यर्थः।।

वासरे मधुरिपोरुपोषिताः
कामिनो दिवि वसन्ति भूषिताः।
उर्वशीप्रमुखवारयोषिता[1]-
मालिभिर्ललितभावतोषिता।।३०।।

मधुरिपोर्वासरे एकादश्यामुपोषिता उपवासवन्तः कामिनः सकामा नरा भूसिता भूषणालंकृताः सन्तो दिवि स्वर्गे वसन्ति। उर्वश्यादिस्वर्गनारीणां पंक्तिभिर्मनोहरै-र्भावैर्विलासैस्तोषिता हर्षिताश्च।।

जाग्रतो हरिपदाम्बुजाग्रतो
यस्य याति सकलां विभावरी।
तत्कलेवरविभा वरीयसी
स्वः सदैव रविभावदुल्लसेत्[2]।।३१।।

---

१. देवयोषिता-क।
२. दुर्ल्लसेत्-क।

हरिचरणाग्रे जाग्रतो निद्रामकुर्वतो यस्य पुंसः सकला विभावरी रात्रिर्याति तस्य कलेवर विभा शरीरकान्तिर्वरीयसी श्रेष्ठा स्वः स्वर्गे सदैव रविभावत्सूर्य्यकान्तिवत् शोभते।।

रामनामभणितिं सुधाविधां
मा मनागपि मुखाम्बुज त्यज।
यामनादृतवति प्रतीयते
कामना नरि न दूरदूषणा।।३२।।

सुधाविधाममृततुल्यां रामनामभणितं हरिनामोक्तिं मुखकमलान्मनाक् स्तोकमपि मा त्यज्य। शश्वद्धरिनामानि जपेत्यर्थः। यां रामनामोक्तिमनादृतवती असेवमाने नरि पुंसि दूरदूषणा दूरे दूषणं यस्यास्तादृशी दूषणहीना कामनाभिलासो न प्रतीयते। हर्यभक्तस्याभीष्टालाभात्।।

यादृशेन मनसा जनार्द्दनं
सेवते सकलदेवतातनुम्।
तादृशं फलमुपैति मानवः
स्वर्ग सौख्यमथ मुक्तिमुत्तमाम्।।३३।।

मानवो नरः सर्वदेवस्वरूपं हरिं यादृशेन सकामनिष्कामेन मनसा सेवते तादृशं फलं स्वर्गसौख्यमुत्तमां मुक्तिं चोपैति। निःकामसकामभेदेन।।

मानसं यदि करोषि रामसा-
त्कामसाध्यतमसंपदं ततः।
मन्यसे यदुपचारचातुरी
धातुरीड्यतरतां न कं नयेत्।।३४।।

यदि मानसं चित्तं रामसाद्रामाधीनं करोषि। ततस्तर्हि कामसाध्यतमसम्पदं मन्यसे। तदा सर्वापि सम्पत्साधैव। यदुपचारचातुरी यस्य हरेः सेवने चातुर्य्यं कं नरं धातुर्ब्रह्मणोऽपीड्यतरतां स्तुत्यतमत्वं न नयेत्।। हरिसेवी धातुरपीड्यो भवतीत्यर्थः।।

क्लेशमूलमखिलं वसुप्रजा-
पौरुषादि सुलभं शरीरिणाम्।
दुर्लभा जगति भुक्तिकारणं
रामचन्द्रचरणार्चने रतिः।।३५।।

क्लेशानां रागादीनां मूलं कारणं वसुप्रजापौरुषादि धनसन्तानपराक्रमादि सकलं शरीरिणां सुलभं परन्तु जगति भूतले मुक्तेः कारणता हरिपादपूजायां प्रीतिर्दुर्लभा इत्यर्थः।।

विष्णुभक्तिजितवासनाशया
नाशया तरलयन्ति मानसम्।
मालतीमधुनि लब्धकेलयः
केलयः कुरबकेषु सस्पृहाः।।३६।।

हरिभक्त्या जिता नाशिता वासना दुष्टप्रीतयो यस्मादीदृशः आशयश्चित्तं येषां तादृशा नरा आशया तृष्णया मानसं न तरलयन्ति चञ्चल न कुर्वन्ति। तत्र दृष्टान्तः- मालतीकुसुमेरसे लब्ध्वा केलिः क्रीडा यैस्तादृशाः के अलयो भ्रमराः कुरबकेषु करीरेषु सस्पृहाः सतृष्णा भवन्ति। न केऽपीत्यर्थः।।

तावका वयमनन्त शावका
नावकाशमपि किं निरीक्षितुम्।
तद्ददासि बत बालवत्सलो
विश्वबीज जनको न को भवेत्।।३७।।

हे अनन्त! यदि वयं तावकास्त्वत्सम्बन्धिनः शावकाः शिशवः। 'पृथुकः शावकः शिशुरित्यमरः'। तत्तर्हि इह संसारे निरीक्षितुमस्मान्द्रष्टुमवकाशं किं न ददासि। कुत्रापि समयेऽस्मानवलोकयेत्यर्थः बतेति हर्षे। हे विश्वबीज जगत्कारण! को जनकः पिता बालवत्सलो बालप्रियो न भवेत्। पिता पुत्रप्रियो सर्वोपि भवेदेवेत्यर्थः।।

भक्तिरस्ति यदि कृष्ण तावकी
तत्किमेति भवसम्भवं भयम्।
अन्धकारगरिमा करोति किं
भास्करे नयनमार्गमागते।।३८।।

हे कृष्ण! यदि तावकी भक्तिरस्ति तत्तर्हि भवसम्भवं संसारोत्छं भयं किमेति प्राप्नोति। न प्राप्नोतीत्यर्थः तत्र दृष्टान्तः - भास्करे रवौ नयनमार्गं चक्षुर्विषयमागते सति अन्धकारगरिमा तमो बाहुल्यं किं करोति। न किमपीत्यर्थः।।

श्रीनृसिंह तव पादयोर्द्वयं
नित्यमत्ययभयादयादयम्।
मन्मनोऽणुरणुभिर्विना भयं
रंरमीतु सुरसिन्धुसम्भवैः।।३९।।

हे श्रीनृसिंह! अयं मन्मन एवाणुः परमाणुरत्ययभयान्मृत्युभीतेर्हेतोस्तव पादद्वयं नित्यमयात् सर्वदा प्राप्तः। अतः सुरसिन्धुसम्भवैः पदद्वयगतैर्गङ्गोद्भवैरणुभिर्जलबिन्दुभिः सह भयं विना मृत्युभयं विहाय रंरमीतु अत्यन्तं रमताम्। रमतेर्यङ्लुकि लोटि रूपं।।

इन्द्रियं विषयसाधनप्रियं
विग्रहः सपदि दत्तनिग्रहः।
मानसं मिषति का न सम्पदः
केवलं तु मम ते बलं हरे।।४०।।

हे हरे! ममेन्द्रियं चक्षुरादि विषयाणां साधनं सम्पादनं प्रियं यस्येदृशम्। विग्रहः शरीरं दत्तो निग्रहः पराजयो येन तादृशः। मानसं काः सम्पदो न मिषति न स्पृहयति। सर्वा अपीत्यर्थः। एवमिन्द्रियदेहमनस्सु मां पराभवत्सु मम केवलं ते तव बलम्। त्वं रक्षक इत्यर्थः।।

रामचन्द्र तव भक्तियोगतो
यो गतो जनभृतामपि क्षणः।
तेन तन्नरकसंघसाध्वसं
साध्वसम्भवमशेषतो व्रजेत्।।४१।।

हे रामचन्द्र! जनिभृतां प्राणिनां तव भक्तियोगाद्यः क्षणः कालो गतस्तेन नरकसमूहाज्जातं साध्वसं भयमशेषतः समग्रं साधु यथा यथा असम्भवं नाशं व्रजेत्। क्षत्रमात्रकृतया तव भक्त्या यदि पापनाशस्तर्हि जन्मावधि कृतया किमु वक्तव्यमित्यर्थः।।

पद्मनाभ तव पादपद्मयोः
पद्मयोनिरूपचारुचातुरीम्।
शीलयन्भुवनकर्त्तृतामगा-
त्तामगाधमहिमश्रियं च सः।।४२।।

हे पद्मनाभ! पद्मयोनिर्ब्रह्मा तवाङ्घ्रिकमलयोः सेवनचातुर्य्यमभ्यसन् लोककर्तृत्वं प्राप। तां प्रसिद्धिमगाधो महिमाकीर्त्तिर्यस्यास्तादृशीं श्रियं च सोऽगादिति सम्बन्धः।।

रामचन्द्र तव पादसेवया
देव याति न किमीहितं नरः।
तन्न रक्षसि कथं दयानिधे
तानि धेहि चरितानि ते मयि।।४३।।

हे रामचन्द्र, हे देव! तवाङ्घ्रिसेवया नरः किमीहितं कमभिलाषं न याति नाप्नोति। सर्वाभिलाषदायिनी तव भक्तिरित्यर्थः। हे दयानिधे! तत्तर्हि कथं न रक्षसि। मामिति शेषः। तानि प्रसिद्धानि ते तव चरितानि गोवर्द्धनोद्धरणादीनि मयि धेहि धारय। तव चरितविस्मरणं मास्त्वित्यर्थः।

चन्द्रदीधितिचयान्प्रभावतो
भावतोऽपि हि जयन्ति याः प्रभो।

कीर्त्तयो हृदि लसन्तु मे घना
मेघनादवधबन्धुरास्तव।।४४।।

हे प्रभो! मेघनादो रावणात्मजस्तस्य बधेन बन्धुरा मनोहरा घना निविडास्तव ताः कीर्त्तयो मे मम हृदि लसन्तु स्फुरन्तु। ताः काः। याः प्रभावतः प्रभावेण महिम्ना भावतः कान्तिमतः चन्द्रदीधिति च यान् शशिरश्मिसमूहान् जयन्ति। ततोऽप्युज्ज्वलाः इत्यर्थः।।

ये भजन्ति तव पादपङ्कजं
पङ्कजं न भयमाप्नुवन्ति ते।
यस्य पादकमलार्च्चनेहया
नेह याति भविता जनः पुनः।।४५।।

हे हरे! ये तव पादकमलं भजन्ति ते पङ्कजं पापजातं भयं न प्राप्नुवन्ति। यस्य पादपद्मपूजालक्षणया ईहया चेष्टया जनः पुनरिह लोके भविता जन्मवत्वं न याति नाप्नोति।।

पीतचीवरधरं रमापतिं
नीलनीरजदलोपमद्युतिम्।
मालया तुलसिमञ्जरीभुवा
भूषितं भुवनभूषणं भजे।।४६।।

पीतं चीवरमंशुकं धरति तं रमायाः पतिं कान्तं नीलं यन्नीरजदलं पद्मपत्रं तत्तुल्या द्युतिर्यस्य तं श्यामं तुलसिमञ्जरी जातया मालया भूषितं लोकाभरणं हरिं भजे। तुलस्यामञ्जरीति समासेऽपि इकारौ स्त्रीकृतौ ह्रस्वौ क्वचिदिति ह्रस्वः।।

मन्महे किमपि [1]तन्महेशितु-
र्धाम नित्यरमणीयमव्ययम्।
यद्विदन्ति नहि सूरयो जना
वेदवाचि कृतयुक्तियोजनाः।।४७।।

नित्यं रमणीयं सुन्दरव्ययेमपि क्षयहीनं किमपि लोकोत्तरं महेशितुर्हरेस्तद्धाम स्वरूपं वयं मन्महे चिन्तयामः। वेदवाचि वेदवाण्यां कृता युक्त्या योजना यैस्तै। वेदार्थज्ञा अपि सूरयो बुधाजना यद्धाम न विदन्ति न जानन्तीत्यर्थः।।

रागिणां सुरतरङ्गिणीक्षणा-
त्स्वर्वधूसुरतरङ्गिणी तनुः।
अस्तु किं पुनरियं विरागिणां
देहमात्रमपि यन्न सासहिः।।४८।।

---

१. तत्मेह- क।

रागिणां सकामानां तनुः शरीरं सुरतरङ्गिणीक्षणात् गङ्गादर्शनात् स्वर्वधू सुरतरङ्गिणी अप्सरोमैथुनरागवती अस्तु। सकामानां गङ्गादर्शनात्स्वर्गप्राप्तिर्भवतु नाम। इयं गङ्गापुनर्विरागिणां निष्कामानां देहमात्रमपि यन्न सासहिर्न सहते तत्किम्। सकामानां स्वर्गं ददातु निष्कामानां देहमपि कथं न सहते। तेभ्यो मुक्तिं ददातीत्यर्थः।।

ईदृशं निजरसान्निरन्तरं
कुर्वती हसितवारिजानना।
गर्ज्जति त्रिभुवने निरर्गलं
तत्फलं हरिपदाश्रयादलम्।।४९।।

निजरसात्स्वरागान्निरन्तरं इदृशं पूर्वश्लोकोक्तं सकामनिष्कामेभ्यो द्युभोगमुक्तिरूपं फलदानं कुर्वती हसितवारिजानना विकसितकमलमेव मुखं यस्या ईदृशी त्रिभुवने निरर्गलं गर्ज्जति तदुभयविधं फलं हरिपादाश्रयादलपूर्णम्। हरिचरणोत्पन्नत्वादेवेदृशं गङ्गासामर्थ्यमित्यर्थः।

या मुकुन्दपदपङ्कजालया
लीलया हरति सर्वपातकम्।
दूषणानि तव हन्तु सा धुनी
साधुनीरजविराजितोदका।।५०।।

या हरिपदपद्मालया सती लीलया सर्वपातकं हरति साधूनि नीरजानि पद्मानि तैर्विभूषितजला सा धुनी नदी गङ्गा तव दूषणानि पापानि हन्तु नाशयतु।।

राजन्यव्याजराजद्दितिदनुतनुजोद्दामदोर्दण्डदर्प-
प्राग्भारस्फारकृत्येतरभरतरले भूतलेऽम्भोजजन्मा।।
अस्तौषीदस्तदोषस्तवनिवहमहोत्साहवत्या गिरा यं
तं षड्भ्यो दर्शनेभ्यः कमपि समधिकं चेतसाराधयामः।।५१।।

इति श्री "विष्णुभक्तिकल्पलताख्ये" कवि श्री पुरुषोत्तमकृतौ
"रागिविरागिफल विवेको नाम द्वितीयः स्तवकः।।

राजन्यानां नृपाणां व्याजेन मिषेण राजन्तो ये दितिदनुतनुजा दैत्याः दानवाश्च तेषामुद्दामा उत्कटा ये दोर्दण्डाभुजास्तेषां दर्पप्राग्भारेण गर्वोत्कर्षेण स्फारं महत् यत्कृत्येतरमकृत्यं तस्य भरोऽतिशयस्तेन तरले चञ्चले भूतले अम्भोजजन्मा ब्रह्मा अस्तदोषो दोषरहितो यः स्तवनिवहः स्तुति समूहः स एव महोत्सवो यस्यां सा तया गिरा यमस्तौषीत् तुष्टाव षड्भ्यो दर्शनेभ्यो मीमांसादिभ्यः समधिकं तं कमपि ब्रह्मस्वरूपं चेतसा मनसा आराधयामः।। स्रग्धराछन्दः।।

इति श्री महीधरकृते विष्णुभक्ति कल्लता विवरणे
"रागिविरागिफलविवेको" नाम द्वितीयः स्तबकः।।

तृतीयः स्तबकः।

षष्ठी मङ्गलवारदास्ति हृदये येषां व्यतीपाततो
न त्रासः श्रवणेऽपि विष्टिरनिशं तेषां न वा तद्गरम्।
अन्ये तु व्यतिपातविष्टिविवशा दर्शेन्दुदीनानना
दृश्यन्ते भरणीशभृत्यभयतो भीता भुवो मण्डले।।१।।

तिथिगौर्याः स्मृता षष्ठी इति कोषात् 'षष्ठी तु षण्णां पूरण्यां कात्यायन्यामपीष्यते' इति विश्वोक्तेः षष्ठी गौरी मङ्गलवारदा। समूहनिकरव्रातवारसंघात संचयाः इत्यमरोक्तेः। मंगलसमूहदात्री येषां हृदये अस्ति। तेषां गौरीस्मरणशीलानां व्यतीपातादुत्पातात्त्रासो न भवति। 'व्यतीपातो महोत्पाते योगभेदावपातयोः' इति विश्वः। तथा तेषां श्रवणे कर्णेऽपि अनिशं निरन्तरं विष्टिर्न द्रविणमन्तरेण परकर्मकारित्वं न। 'विष्टिः कर्मकरे भद्रे प्रेषणे चेतनेऽपि च' इति विश्वः न वा तेषां गरं विषम्। विषकृतपराभवोऽपि नास्ति। 'गरो व्याधावुपविषे विषे च करणे गरम् इति विश्वः। अन्ये गौर्य्या अभक्तास्तु व्यतीपातविष्टिभ्यां महोत्पातपरसेवकत्वाभ्यां व्याकुलाः सन्तो दर्शेन्दुदीनाननाः। अमावस्या चन्द्रतुल्यवदना भरणीशो भरणीनक्षत्रस्वामी यमस्तस्य भृत्या यमदूतास्तेभ्यो यद्भयं ततो भीताः। भुवो मण्डले दृश्यन्ते। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः। 'सूर्याश्वैर्मसजास्तया सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' इति लक्षणात्।।

अनुजनु क्व नु मानुषयोनिषु
भ्रमसि जिह्व हितं महितं शृणु।
श्रय जगत्त्रितयप्रियमच्युतं
विमलमङ्गलमङ्गलसच्छ्रियम्[१]।।२।।

हे जिह्व! अनुजनुः प्रतिजन्म मानुषयोनिषु क्व भ्रमसि। महितं पूजितं हितं वाक्यं शृणु। जगित्त्रतयप्रियं त्रैलोक्यबल्लभं निर्म्मलमङ्गलयुतं अङ्गे लसन्ती शोभमाना श्रीर्यस्य तमच्युतं हरिं श्रय सेवस्व। द्रुतविलम्बितं छन्दः। द्रुतविलम्बितमाहनभौ भरौ इति लक्षणात्।।

अलस मानस मानसमा न ते
क्वचन केऽपि विरोध विधायिनः।

---

१. सच्छ्रियं-क।

जड यदीयसमागमसंभवा-
बतरहेतुरहो तव कर्तृता।।३।।

हे अलस आलस्ययुक्त! हे मानसचित्त! ते तव मानसमा अभिमानतुल्याः केऽपि विरोधविधायिनः शत्रवः क्वचन क्वापि न सन्ति। हे जड मूर्ख! यदीयसमागमसम्भवा अभिमानसङ्गाज्जाता अनेकावतारकारणभूता तव कर्तृता कर्तृत्वम्। वास्तवं कर्तृत्वं तव नास्ति अभिमानिकमेवेत्यर्थः।।

यदि नरा दिनरात्रिषु केशवे
जपरताः परतापनिवारिणि।
अपि न मोहतमोहतचेतस-
स्तदिह कष्टकथापि कुतो भवेत्।।४।।

नरा यदि दिनरात्रिषु अहोरात्रं परतापनिवारिणि आध्यात्मिकादि तापनिवर्त्तके केशवे जपरताः स्युः। तदपि तदा मोहतमसा अविवेकान्धकारेण हतं चेतो येषामीदृशा न भवन्ति। तर्हि कष्ट कथा दुःखवार्त्तापि कुतो भवेत्। न भवेदेवेत्यर्थः।।

पिब मुकुन्दकथा भवतोऽन्यथा
[1]भवषधाघटिता विविधव्यथाः।
क इव वारयिता दयिताद्युप-
द्रवजवप्रचुरोपचयस्छिराः[2]।।५।।

हे जन्तो! मुकुन्दकथाः पिब आदरेण श्रृणु। अन्यथा हरिकथापानमन्तरेण दयितादीनां कलत्रपुत्रगृहवित्तपश्वादीनां य उपद्रवजवः पराभववेगस्तस्य प्रचुरोऽधिको य उपचयो वृद्धिस्तेन स्छिराः यावज्जीवानुवर्त्तिनीः भवपथे संसारमार्गे आसमन्तात् घटिता रचिता भवस्तव विविधव्यथा नानापीडाः क इव वारयिता। न कोऽपि निवारक इत्यर्थः।।

हृदयतोयजतो यज तोषितं
भृशमनन्तमनन्तरया श्रिया।
किमितरैर्मितरैर्विमुखैर्मखै-
र्निखिलदोषदृशेक्षितुमीहितैः।।६।।

अनन्तरया निकटवर्त्तिन्या श्रिया भृशमत्यन्तं तोषितं सेवितं अनन्तं हरिं हृदयतोयजतो हृत्कमले यजपूजय। मितं स्वल्पं रान्ति ददाति ते मितरास्तैरल्प-स्वर्गादिफलदैरत एव हरेर्विमुखैर्निखिला ये दोषास्तेषां दृष्ट्या ईक्षितुमवलोकयितुमिहितैः

---

१. भवपथा-क।

२. स्थिराः-क।

सदोषैरितरैर्हरिभजनादन्यैर्मखैर्ज्योतिष्टोमादिभिः किम्। न किमपीत्यर्थः।।

चरणतामरसं मुरवैरिणः
स्मर चिरं रुचिरं रुचिरङ्गचेत्।
भवति तोयनिधिं तव जन्मव-
न्न सुतरं त्वरितुं तरितुं भवम्।।७।।

अङ्गेति सम्बुद्धौ। हे जन्मवन् जन्तो! चेद्यदि असुतरं सुखेन तरितुमशक्यं भवं तोयनिधिं संसाराब्धिं त्वरितं तूर्णं तरितुमभिक्रीमतुं तव रुचिर्भवति। तर्हि रुचिरं कान्तं मुरवैरिणो हरेश्चरणतामरसं पादपद्मं चिरं स्मर।।

मनसिकृत्य कृतार्थय जीवितं
त्वमधुना मधुनाशनमादरात्।
भवति धर्मविधौ न पटीयसी
दशमिता शमिता [१]तनुरङ्गिणीम्।।८।।

अधुनैव मधुनाशनं हरिमादरात् मनसिकृत्यविषयान्तरपरित्यागेन संचित्य जीवितं कृतार्थाय। 'करणेमनसी श्रद्धाप्रतिघाते' इति गति संज्ञेन मनसिशब्देन समासे सति 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' इति त्त्काप्रत्ययस्य ल्यबादेशः। अधुनेति कथमत्याग्रह इत्याह- दशमोऽवस्थाविशेषोऽस्यास्तीति दशमी वृद्धः। 'वर्षीयान्दशमी ज्यायानित्यमरः'। तस्य भावो दशमिता तया शमिता जराजर्जरिता अङ्गिनां देहिनां तनुः शरीरं धर्मविधौ धर्मानुष्ठाने पटीयसी पटुतरा समर्था न भवति। वार्द्धके भजनाशक्तेरिदानीमेव हरिं भजेत्यर्थः।।

निजनिजव्यवहारविधिक्षमो
भवति यावदयं खचयस्तव।
हरिपदप्रणतौ क्रियतां त्वरा
तव पुरा वपुराश्रयते जरा।।९।।

'खमिन्द्रिये सुखे स्वर्गे शून्ये बिन्दौ विहायसि'। 'चयः समूहे प्राकारमूलबन्धे समाहतौ' इति च विश्वोक्तेः। खानामिन्द्रियाणां चयः समूहोऽयं श्रोतादिस्तव तावको यावन्निजनिज व्यवहार विधौ श्रवणस्पर्शनादिकर्त्तव्ये क्षमः। क्षमो भवति तावत्हरिपदप्रणतौ नारायणचरणनमस्कारे त्वारा वेगः क्रियताम्। यतो जरा तव वपुः पुराश्रयते आश्रयिष्यतो वार्द्धक्ये जराग्रस्तेन्द्रियाणामसामर्थ्ये हरिभजनाशक्तेरिदानीं भजेत्यर्थः।।

अभिमतं लभते तपसा जन-
स्तदपि सौख्यकरं न भवेत्पुनः।

---

१. तनुरङ्गिनाम्-क।

इदमनित्यमिति व्यथते मन-
स्तदुचितं हरिसेवनमेव नः।।१०।।

जनस्तपसा यद्यपि अभीष्टं प्राप्नोति तदपि पुनः सुखकारि न भवेत्। यतोऽनित्यमिदमिति मनो व्यथते व्याकुलीभवति। तत्तस्मान्नोऽस्माकं हरिसेवनमेवोचितं योग्यं नित्यत्वादित्यर्थः।।

दनुजतर्जुनतो जनतोषकृ-
द्धनसमान वपुर्नवपुष्टिभूः।
वसतु हृत्कमले कमलेश्वर-
श्चिरमयं रमयन्मम मानसम्।।११।।

दनुजानां दानवानां तर्जुनेन तिरस्कारेण जनानां सन्तोषकारी मेघश्यामो नवाया नूतनायाः पुष्टेः पोषस्य भूः स्थानम्। जगत्पोषणकृदित्यर्थः। कमलेश्वरो रमापतिरयं हरिश्चिरं मम मानसं रमयन्नानन्दयन्मे हृत्कमले वसतु।।

अतिभयंकरसंसृतिसागरे
रतिपतिप्रमुखैः कलितं झषैः।
त्वमव माधव मां तुलसीदलै-
र्ललितमाल तमालदलद्युते।।१२।।

हे तुलसीदलैः कृत्वा ललितमालमनोहरमालायुक्त, हे तमालपत्रश्याम, हे माधव! अत्यन्त भयंकरे संसारसमुद्रे रतिपतिप्रमुखैः कामक्रोधाद्यैर्झषैर्मत्स्यैः कलितं भक्षितं मां त्वमव रक्षेत्यर्थः।।

तव दृगन्तसुधालहरी मयि-
त्रिविधतापवति क्षणमापतेत्।
नरहरे बहवोऽपि यदुधृताः
शुभवता भवता भवतापिताः।।१३।।

हे नरहरे! त्रिविधतापवति आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकदुःखयुक्ते मयि तव दृगन्तः कटाक्ष एव सुधालहरी अमृतोर्मिः क्षणमापतेत्। आपततु 'विधिमन्त्रणा मन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' इति प्रार्थने लिङ्। यद्यतः शुभवता कल्याणयुक्तेन भवता त्वया भवतापिताः संसारदुःखपीडिता बहवोऽप्युद्धृताः।।

विविधपातकजातकदर्थना-
कुलितजन्तुशरण्यशिरोमणे।
मम मनो विदधातु पदाम्बुजा-
त्तव रमावर मा वरमाश्रयम्।।१४।।

नानाविधं यत्पातकजातं पापौघस्तेन या कदर्थना दुःखं तया आकुलिताः पीडिता ये जन्तवस्तेषां शरण्याः शरण्ये साधवोरक्षकाः तेषां शिरोमणे मुकुटभूत हे रमावर लक्ष्मीपते! मम मनस्तव पादाम्बुजादवरमन्यमाश्रयं मा विदधातु मा कुरुताम्। मन्मनस्त्वत्पदाम्बुज एव तिष्ठत्वित्यर्थः।।

सततसंसरणाध्वनि धावतो
भवतु मे भवदङ्घ्रिषु विश्रमः।
प्रकटयन्स्वमपाकुरु मे तमः
कपटवामन वा मनसि क्षणम्।।१५।।

अधिभवाटवि मन्मथवात्यया
कलुषितात्मतया निजदिङ्मुखम्।
अज न वेद्मि तदत्र दयां कुरु
भ्रमति मे मतिमेदुर मानसम्।।१६।।

हे अज, हे हरे! अधिभवाटवि संसारवने मन्मथ एव वात्या वातस्य मण्डली तया कामरूपिण्या वात्यया कलुषित आत्मा चित्तं यस्य तस्य भावस्तत्त। तया कामव्याकुलत्वेन निजदिङ्मुखं त्वदीयदिशोमुखं न वेद्मि यस्यां दिशि त्वमसि तां न जानामि। तत्तस्मादत्र मयि दयां कुरु। हे मतिमेदुर! मत्या मेदुरो व्याप्तस्तत्सम्बुद्धौ बहुबुद्धे। मे मम मानसं भ्रमति। चित्तभ्रमाज्ज्ञानं निवर्त्त्य त्वत्स्वरूपं दर्शयेत्यर्थः।

विविधदानवराजिविराजितो-
र्ज्जितदिगन्तचारिष्णुयशोजनिः।
तव करोतु करोऽतुल विक्रमो-
ऽति सुषमः सुखमच्युतः सर्वदा।।१७।।

विविधा या दानवराजिर्दैत्यश्रेणीस्तया विराजिताः शोभिता अतएवोर्ज्जिता उत्कृष्टा ये दिगन्ताः दिक्प्रदेशास्तत्र चरिष्णु गमशीलं यद्यशोदैत्यमारणोत्था कीर्त्तिस्तस्या जनिरुत्पत्तिर्यस्मादीदृशोऽत एवातुलविक्रमोऽनुपमपराक्रमोऽतिसुषमोऽत्यन्तं शोभनः। 'सुषमा परमा शोभा'। हे अच्युत! ईदृशस्तव करो हस्तः सर्वदा सुखं करोतु।।

ध्रुवमयुर्लयमप्यभियातयो
महसि ते ह सितेतरतेजसि।
तदपराधपरा धरणीभरो-
द्धर नराः किमु ते स्मरणे रताः।।१८।।

हे धरणीभरोद्धर धरण्याः पृथ्व्याः भरमुद्धरतीति पृथ्वीभारहर! अपरापरा आगस्कृतोऽभियातयः शत्रवः शिशुपालादयोऽपि ह स्फुटं सितेतरतेजसि श्यामसुन्दरे

ते तव महसि स्वरूपे ध्रुवं लयमयुः प्रापुलीना इत्यर्थः। तर्हि ते तव स्मरणे रता नरः पुरुषास्त्वयि लीयन्ते तत्र किमु वक्तव्यमित्यर्थः।।

पतति पन्नगराजधृता धरा-
तिमिरमेति गतिं रविमण्डले।
तदपि कृष्ण कदापि भवत्पदा-
र्चनपरे न परे तपतेर्दरः[1]।।१९।।

पन्नगराजेन शेषेण धृतापि धरा भूः पतति। रविमण्डलेऽपि तिमिरं तमो गतिमेति। सूर्योऽपि नश्यतीत्यर्थः। हे कृष्ण! तदपि भवत्पदार्चनपरे त्वत्पूजके नरे कदापि परेतपतेर्यमस्य दरस्त्रासो न। प्रलयेऽपि त्वद्भक्ता न नश्यन्तीत्यर्थः 'परासुप्राप्तपञ्चत्वपरेतप्रेससंज्ञकाः इत्यमरः परेतानां मृतानां पतिर्यमः।।

न भवतो भवतोयनिधौ नृणां
शरणमस्ति परं प्रणिमज्जताम्।
जलजनेत्र जनेऽत्र दधद्दयां
भवभयादव यादव तेन माम्।।२०।।

हे जलजनेत्र पुण्डरीकाक्ष! भवतोयनिधौ संसाराब्धौ प्रणिमज्जतां नृणां भवतस्त्वत्तः परमन्यच्छरणं नास्ति। हे यादव! तेन कारणेन त्वदन्यशरणाभावलक्षणेनात्र मयि जने दयां दधत्। धारयन्भवभयात्संसारभीतेर्मामव रक्ष।।

वसतिरेव सती वसतीश्वरो
हृदि निरामय राम यदा भवान्।
जनमनोहर नोऽहरपि क्षपा
न रमसेऽरमसेचनकेऽत्र चेत्।।२१।।

हे निरामय निर्दोष हे राम! यदा ईश्वरः समर्थो भवान् हृदि चित्ते वसति तदा वसतिरेव रात्रिरपि सतीसमीचीना। वसती रात्रिवेश्मनोरित्यमरः। हे जनमनोहर लोकानन्ददायिन्! अरमत्यर्थं असेचनके दुःखदायिनीति। अत्र चित्त चेत्त्वं न रमसे तर्हि नोऽस्माकमहरपि दिवसोऽपि क्षपा रात्रितुल्यः। त्वयि चित्तागते सर्वदा प्रकाशोऽन्यथा तिमिरमित्यर्थः। 'तदा सेचनकं तृप्तेर्नास्त्यन्तो यस्य दर्शनादितिकोशः'।।

---

१. तपतेर्दरः-क।

श्रीलक्ष्मीनृसिंहाय नमः।।

मम मनश्चरितार्थयतु क्षणं
तव सुसंहननं हननं भियाम्।
अमरशेषर[1] शेषरमाप्रियं
सजलतोयदतो यदतिद्युति।।२२।।

हे अमरशेषर सुराणां मुकुटभूत! यत्सजलतो यदतः सनीरमेघादतिद्युतिश्चधिक कान्तियुक्तं शेषरमाप्रियं नागेशलक्ष्मीबल्लभं भियां भयानां हननं नाशकं तव सुष्ठु संहननं शरीरं तन्मम मनश्चरितार्थं करोतु। तनुस्तनूः संहननं शरीरमिति हलायुधः। क्षणं त्वां ध्यात्वा कृती भवेयमिति भावः।।

भवविडम्बनया रहितोऽनया
क्व समये समयेष्टविपक्षयोः।
तव रमेश रमे शरणं गतः
प्रतिपदातिपदाश्रितया तव।।२३।।

हे रमेश श्रीपते! अनया भवविडम्बनया संसारदुःखेन रहितस्तवात्यन्तं पदाश्रितया प्रतिपदा चेतना। 'प्रतिपज्ज्ञप्तिचेतनाः'। तव शरणं गतः सन् क्व समये कस्मिन्काले रमे क्रीडामि। किं भूतया प्रतिपदा। इष्टविपक्षयोर्मित्राहितयोः समया तुल्यया। रागद्वेषहीनः कदा भवच्छरणं यामीत्यर्थः।।

शमितसंसृतिसंतमसं महः
श्रुतिगिरा रममाणमहो रहः।
प्रकटयन्प्रकृतेः परमात्मनो
मम रमस्व रमावर मानसे।।२४।।

हे रमावर श्रीपते! शमितं नाशितं संसृतिः संसार एव संतमसं गाढं तयो येन तथा रहः श्रुतिगिरा वेदवाण्या सह रममाणं प्रकृतेर्मायायाः परं मायातीतमात्मनः स्वस्य महस्तेजो मम मानसे प्रकटयन्प्रकटं कुर्वन् रमस्वेत्यर्थः।

दिवि भवा विभवा विभवात्मनो
वशमिताः शमितामितहृद्रुजः।
प्रथमपुण्यचयव्ययहेतव-
स्तव तु भक्तिरचिन्त्यफलायतौ।।२५।।

हे विभो! दिविभावाः स्वर्गस्था विभवा भोगा आत्मनो वशमिताः प्राप्ताः शमिता अमिता बहवो हृद्रुज आधयो यैरीदृशा भवन्ति। परन्तु प्रथमो यः पुण्यचयः

---

१. शेखर-क।

सुकृतौघस्तस्य व्यये नाशे हेतवः कारणभूताः। तु पुनस्तव भक्तिरायतावुत्तरकाले अचिन्त्यफला बहुफलयुक्ता तव भक्तिफलव्ययो नास्तीत्यर्थः।।

अतिदयालु मनः कमनच्छवि-
स्तनुरकण्टकराज्यमिलातले।
तव परीष्टिलतादलतां गता
गजवरा जवराजितविग्रहाः।।२६।।

अत्यन्तं दयायुक्तं मनः कमना कमनीया छविः कान्तिर्यस्येदृशी तनुः शरीरम्, इलातले भूतलेऽकण्टकं रिपुहीनं राज्यम्। 'कण्टकः क्षुद्रवैरिणी वेणौ द्रुमाङ्गे रोनाञ्चे' इति कोषः। तथा जवेन वेगेन राजिताः शोभिता विग्रहाः शरीराणि येषामीदृशा गजवरा दन्तिराजाः। एते पदार्थास्तव परीष्टिलतायाः सेवालक्षणवल्लया दलतां पत्रभावं गताः। तव सेवया एते सहजेन भवन्तीत्यर्थः।।

विदधतु क्रतुकोटिमहोत्सवाः
कमलया मलयापनमीश्वराः।
तव पदस्मृतिरेव पुनातु मां
यदसि देव दयालुरकिञ्चने।।२७।।

क्रतु कोटय एव महोत्सवा येषामीदृशा ईश्वर धनिनः कमलया लक्ष्म्या मलयापनं पापनाशनं विदधतु कुर्वन्तु। मां तु तव पदस्मृतिरेव पुनातु शोधयतु। यद्यस्मात् हे देव! अकिञ्चने निर्धने त्वं दयालुरसि।।

दहति दारुणदुःखपरम्परा
सदय यादव या दववद्वपुः।
प्रथमजन्मसु सम्यगुपार्ज्जिता
शमय तामयतात्मतया मया।।२८।।

अयतात्मतया अजितेयं त्वेन मया पूर्वजन्मसु सम्यक् उपार्जिता या दारुपणानां दुःखानां परम्परा दववद्दावानलवद्वेपुर्दहति। हे यादव यदुवंशरत्न! हे सदय दयालो! तां दुःखश्रेणीं शमय निवर्त्तय।।

खरकुलं तरसा विनिपात्य त-
त्सतृणराजवनं जवनं मृधे।
सुखयति स्म दयालुतया भवा-
न्विजितधेनुक धेनुकदम्बकम्।।२९।।

हे विजितधेनुक! विशेषेण जितः पराजितो धेनुको दानवो येन तादृश, तृणराजानां लतानां वनेन सहितं मृधे युद्ध जवनं वेगवत् तत्प्रसिद्धं खरकुले

रासभदेहधारिदानवान्वयं तरसा वेगेन निपात्य धेनुकदम्बकं गोसमूहं दयालुत्वेन भावान्सुखयति स्म सुखयुक्तमकार्षीत्।।

परवधूकिलकिञ्चितचिन्तया
मलिनमीश मनः शमनक्रुधः।
न परिचिन्त्य बिभेति ततोऽव मां-
मदनतात नतातनुतोषकृत्।।३०।।

परस्त्रीणां किलकिञ्चितं विलासस्तस्य स्मरणेन मलिनमपि मे मनः शमनक्रुधोयमक्रोधान्परिचिन्त्य न बिभेति। हे ईश! मदनतात कामपितः, हे नतातनुतोषकृत् प्रणतानां वह्वानन्द कारिन् ततो हेतोर्मामव रक्ष। त्वच्चरणलग्नं मच्चेतो यमं न गणयतीत्यर्थः।।

जननकोटिकृतं दुरितं नर-
स्तरति नामनि ते मनिते मनाक्।
तदपि माधव मां किमुपेक्षसे
भवदवे वद वेदनयाऽनया।।३१।।

हे माधव! नरस्तव नामनि मनाक् स्तोकमपि मनिते पूजिते ध्याते सति। 'मनअर्चने' क्तान्तः जननानां जन्मनां कोट्या कृतं दुरितं पापं तरति। तदपि भवदवे संसारदावानले अनया वेदनया पीडयोपलक्षितं मां किमुपेक्षसे तद्वद। वाक्यार्थस्य कर्मत्वम्। मदुपेक्षां हित्वा मां पालयेत्यर्थः। 'वेदना ज्ञानपीडयोः'।।

निखिलविष्टकष्टनिवारणं
परशुरामवपुर्दधदेव यत्।
पुनरभूद्रघुवंशविभूषणं
जनहिते नहि ते शिथिलादरः।।३२।।

हे हरे! निखिलानां विष्टपानां जगतां कष्टस्य निवारकं परशुरामस्य वपुर्दधदेव धारयन्नेव यत्त्वं (भवान्) पुना रघुवंशस्य विभूषभूतो रामो दाशरथिरभूदेतद्युक्तमिति शेषः। हिं यतो जनानां हिते कार्ये ते तव शिथिलादरो नास्ति।।

सममममर्त्त्यवधूनिवहैर्मधौ
कुसुमपूरितभूरितरूत्तरे।
मम भवत्स्मृतिसौख्यशतांशदा
न यदुनन्दन नन्दनकेलयः।।३३।।

कुसुमैः पूरिता भूरयो बहवस्तरवो वृक्षा उत्तरा अधिका यस्मिन्नीदृशे मधौ वसन्ते अमर्त्त्यवधूनां देवाङ्गनानां रम्भादीनां निवहैः समूहैः समं सह मम नन्दनवनकेलयो

वासवोद्यानक्रीडा हे यदुनन्दन हरे! भवत्स्मृत्या यत्सुखं तस्य शतांशदात्र्यो न भवन्ति।।

मधुरवेणुरवेण विमोहित-
व्रजवधूजवधूतभवार्त्तयः।
स्मरणमात्रमिताः शमयन्त्यघं
तव न के वनकेलिमहोत्सवाः।।३४।।

मधुरो यो वेणुरवस्तेन विमोहिताः याः व्रजवध्वो गोप्यस्तासां जवेन तरसा धूता निवर्त्तिता भवार्त्तयः संसारव्याधयो यैरीदृशाः हे हरे, तव के वनकेलय एव महोत्सवाः स्मरणमात्रमिताः प्राप्ताः अंधपापं न शमयन्ति अपि तु शमयन्त्येव।।

मनसि तेजसि तेऽज सितद्युति
द्युमणिवृन्दसमे हि समेयुषि।
अपि सुधर्मतया मतया सतां
किमु शचीशतया शतयागतः।।३५।।

हे अज! सितद्युतयः श्वेता ये द्युमणयो दिव्यरत्नानि तेषां वृन्दैः समूहैः समे तुल्ये ते तव तेजसि मनसि समेयुषि समागते सति सतां मतया मान्यया सुधर्मतया शोभनाचरणत्वेनापि किमु शतायागतोऽश्वमेधशतेन कृत्वा शचीशचयेन्द्रत्वेनापि किमु। न किमपीत्यर्थः। यदि हरितेजो मनस्यायातं तदा सर्वे धर्माः कृता इत्यर्थः।।

भवति यत्र भवैकभयापहं
भवदनुस्मरणं समये क्वचित्।
अखिलपर्वसु चारुकराङ्गुली
कलितपर्वत पर्व तदेव मे।।३६।।

चारुभिर्रुचिराभिः कराङ्गुलीभिः कलितो धृतः पर्वतो गोवर्धनो येन तत्सम्बुद्धौ। हे हरे! अखिलपर्वसु सवेषु उत्सवेषु मे मम तदेव पर्व उत्सवः तत्किम्। यत्र क्वचित्समये भवैकभयापहं संसारसाधारणभीतिनिवर्त्तकं भवदनुस्मरणं भवति। त्वत्स्मृतिरेवोत्सव इत्यर्थः। 'पर्व प्रस्तावोत्सवयोर्ग्रन्थौ विषुवदादिषु' इति कोशः।।

अन्नरिचक्रकथाप्रथितार्थया
वसुधया सुधयाप्यथ किं तया।
हरिपदस्मृतिरेव हि केवला
हृदि वसेद्दिवसे दिवसे यदि।।३७।।

यदि दिवसे प्रत्यहं हरिपदस्मृतिरेव केवला हृदि वसेत् तर्हि नास्ति अरिचक्रस्य रिपुसमूहस्यकथा यत्र। प्रथितो विपुलोऽर्थो धनं त्रय। सा च सा चेति। तया च

वसुधया किम्। तथा तया प्रसिद्धया सुधयाऽमृतेनापि किम्। हरिस्मृतौ सत्यामिहामुत्र भोगैः किमित्यर्थः।।

अयि वराह वराहवनिर्ज्जिते-
ऽमितबले तव लेखकुलद्विषि।
कनकचक्षुषि का स्तुतिरम्भसो
धृतवतो धरणीमपि दंष्ट्रया।।३८।।

अयीति सम्बोधने। हे वराह! अमितबले बहुशक्तौ लेखकुलस्य देवसमूहस्य द्विषि शत्रौ कनकचक्षुषि हिरण्याक्षे वराहवे श्रेष्ठयुक्तंद्धे निर्ज्जिते सति। अम्भसः प्रलयजलाद्दंष्ट्रया धरणीमुद्धृतवतस्तव का स्तुतिः।।

यतो नम्रं नैव प्रणमति परं कञ्चन शिरः
करौ कस्याप्यग्रे जगति न युतौ यत्र च युतौ।
वपुः पन्नं नाधः पतति कृतिनां माधवपुन-
र्मुदेऽनन्तायै मे प्रणतिरियमस्तु त्वयि कृता।।३९।।

हे माधव श्रीपते! यतस्त्वयि नम्रं शिर परमन्यं कञ्चन नरं न प्रणमति। यत्र त्वयि युतौ अंजलीकृतौ करौ जगति कस्याप्यग्रे न युतः न युक्तौ भवतः। 'यु मिश्रणे' लट्। यत्र त्वयि पन्नं पतितं वपुः कृतिनां पुण्यवतां वपुरधः नरके न पतति। तस्मिन्त्वयि कृता इयं प्रणतिर्नोऽस्माकमनन्तायै मुदे पूर्णसन्तोषायास्तु।।

स एवाहं पापी कृतदुरितकोटीपरिणति-
प्रभूतापत्तापत्रयरयशयस्त्वच्छरणधीः।
स एव त्वं सत्त्वं भजसि भजदर्त्तिं[1] शमयितुं
गुणातीतं ब्रह्माच्युत वितर तस्मान्मयि दयाम्।।४०।।

कृता या दुरितकोटी पापौघस्तत्परिणतेः परिपाकात्प्रभूता उत्पन्ना या आपत्। यद्वा परिणतिप्रभूता या आपत्कष्टं तापत्रयमाध्यात्मिकादि च तयो रये जवे शेते तथा विधोऽतएव त्वच्छरणधीस्त्वदेकशरणबुद्धिः पापी स एवाहम्। हे अच्युत! त्वं च गुणातीतं ब्रह्मभजतामार्त्तिं पीडां शमयितुं सत्त्वं सत्वगुणेनावतारं रामकृष्णादिकं भजसि। तस्मान्मयि दयां वितर देहि।।

अपीदं चेतो मे हरिचरितपीयूषलहरी-
परीरम्भाभोगप्रसृमरमहानन्द सुभगम्।
अपीयं ज़िह्वा मे नरकरिपुनामव्यसनिनी
भवेदद्धा बद्धाञ्जलि शयसरोजद्वयमिदम्।।४१।।

---

१. भजदार्त्तिम् – क।

हरेश्चरितमेव पीयूषलहर्य्यमृतोर्मिस्तत्परीरम्भाभोगेनास्वादाधिक्येन प्रसृमरः प्रसरणशीलो यो महानन्दस्तेन सुभगं भाग्यवदिदं मे चेतो भवेद्भवतु। मे जिह्वापि नरकरिपोर्हरेर्नामव्यसनिनी नामोच्चारणपराऽस्तु। इयं शयसरोजद्वयं पाणिपद्मयुगलमद्धा साक्षाद्वद्धाञ्जलि कृताञ्जलि भवे भव भवतीत्यर्थः।।

शिवः स वः सवभुवः पावनावनवद्धवः।
अवत्ववभवत्पीव भावलावण्यवच्छिवः।।३२।।

इति श्रीपुरुषोत्तमकृतायां विष्णुभक्तिकल्पलतायां
''स्वाभिप्रायप्रकाशो'' नाम तृतीयः स्तबकः।।

स शिवो वो युष्मानवतु किं भूतान्वः। सवभुवः 'षू प्रसवे'। ऋदो रपू। सवं जन्म भवन्ते प्राप्नुवन्ति ते सवभुवः। 'भू प्राप्तौ आत्मनेपदी अस्मात्क्विप्। शिवः कीदृशः। पावनं शुद्धिः। अवनं रक्षणं, ते विद्येते यत्र स पावनावनवान् इदृशो हवो यजनं यस्य सः। यस्य यजने शुद्धिः शत्रुभ्यो रक्षा च भवतीत्यर्थः। हवस्तु सप्तन्तौ स्यान्नि देशाह्वानयोरपीतिकोशः'। तथा अवभवतां नम्रीभवतां पीवा स्थौल्यं यस्मात्सोऽव भवत्पीवा यं नमतां पीवास्थौल्यं महत्वं भवतीत्यर्थः। भावस्याभिप्रायस्य लावण्यं सौन्दर्यं विद्यते। येषां ते भावलावण्यवन्तः शुद्धाभिप्रायास्तेभ्यः शं सुखं वाति ददाति गमयति वा स तथा। ततः कर्मधारयः।।

इति श्रीमहीधरकृतौ विष्णुभक्तिकल्पलताविवरणे
''स्वाभिप्रायप्रकाशो'' नाम तृतीयः स्तबकः।।

चतुर्थः स्तबकः

रक्षन्तु वो हरिभुजाः प्रतिबिम्बभाजो
[1]वक्षःस्थलस्थिरमणीरमणीय भासि।
क्षीराम्बुधावभिनवा इव पारिजाता
जाताः समस्तजगतामभिलाषपूर्त्त्यै।।१।।

वक्षःस्थले स्थिरा या मणिः कौस्तुभः। 'रत्नं मणिर्द्वयोरित्यमरः'। तस्या रमणीया मनोहरा या भाः कान्तिस्तस्यां प्रतिबिम्बभाजः प्रतिस्फुरन्तो हरिभुजाः वो युष्मान् रक्षन्तु। समस्तजगतां त्रिलोकनामभिलाषपूरणाय क्षीरसमुद्रे जाता अभिनवाः पारिजाता इवेत्युत्प्रेक्षा। कौस्तुभस्य सितत्वात्क्षीरबुध्युपमानम्।।

पादारबिन्दं पुरुषोत्तमस्य
तमस्यगाधेऽभिनिमज्जतां न।।
नखप्रभानिर्ज्जितसोमशोभ-
मशोभनं सर्वमपाकरोतु।।२।।

नखकान्त्या निर्जिता चन्द्रप्रभा येनेदृशं हरेः पादपद्ममगाधेऽपारे तमसि संसाराज्ञानेऽभितो निमज्जतामस्माकं सर्वमशोभनं पापमपाकरोतु निवर्त्तयतु।।

भावाभिधायां निशि येन मोह
दुःस्वप्न दौः[2] स्थात्सपदिप्रबोधः।
सम्पद्यते कोऽपि स चित्तरङ्गः
श्रीरामचन्द्रे यदि चित्तरङ्गः।।३।।

श्रीरामचन्द्रे यदि चित्तरङ्गो मनः प्रीतिःस्यात् तदा सः प्रसिद्धः कोपि अवर्णनीयाश्चित्तो ज्ञानस्य तरङ्ग उर्मिः सम्पद्यते। येन ज्ञानोर्मिणा संसाररूपरात्रौ मोह एव दुःस्वप्नस्तेन यद्दौःस्थ्यं दुःखं तस्मात्सपदि प्रबोधो भवति। संसारान्निवर्तत इत्यर्थः।।

मन्दारमालाभरसादरं य-
न्नाशं निजायुर्निखिलं नयन्ति।

---

१. वक्षस्छलस्थि-क।

२. दौस्थात्सपदि-क।

मन्दारमालाभरसादरं त-
न्न चन्द्रचूडं परितोषयन्ति।।४।।

यद्यपि मन्दाः मूर्खा रमाला भरसाद्धनलाभलोभेन सर्वं निजमायुः अरमत्यर्थं नाशं नयन्ति व्यर्थमायुर्व्ययं कुर्वन्ति। तत्तदपि मन्दारकुसुममालानां भरेऽतिशये सादरं सप्रीतिं चन्द्रचूडं शिवं न परितोषयन्ति न भजन्ति।।

अगोचरो यत्तु मनोरथानां
तुष्टे शिवे वस्तु तदप्यवाप्यम्।
यद्दर्शनाय स्पृहयन्ति देवाः
सोऽभूत्प्रभुर्भूतलभूतलभ्यः।।५।।

यद्वस्तु मनोरथानामगोचरोऽविषयः, यस्य च वस्तुनो दर्शनाय देवाः कामयन्ते, तदपि वस्तु शिवे हरे तुष्टेऽवाप्यम्। स प्रभुः भूतलस्य भूतैर्नरैर्लभ्योऽभूदत्याश्चर्यमित्यर्थः।।

जीवा यदूत्तमपदानि यदृच्छयैव
यन्तो रजोभिरमलैः परिरब्धदेहाः।
नेहाप्नुवन्नवतरं बत कीटकाद्याः
पादार्घ्यदानविधिना विधिनार्चितास्ते।।६।।

बतेति हर्षे कीटकाद्याः क्रिम्याद्या जीवा यदृच्छयैव यदूत्तमस्य कृष्णस्य पदानि पादन्यासस्थलानि यन्तो गच्छन्तोऽतुलैरनुपमैर्रजोभिः पादपांसुभिः परिरब्धदेहा व्याप्ताङ्गाः सन्त इह संसारेऽवतरं जन्म नाप्नुवन् न प्रापुः ते जीवा विधिना ब्रह्मणा पादार्घ्ययोर्दानविधानेन पूजिताः। विधिपूजायोग्यतां प्राप्ता इत्यर्थः।।

तीर्थाधिके सति सदा सुलभे समन्ता-
च्चेतोहरे हरिचरित्रसुधासमुद्रे।
लोकं मिमङ्क्षुमपि पावयति प्रसिद्धे
का भीतिरन्तकभवा भुवि मुक्तिभाजाम्।।७।।

मुक्तिभाजामन्तकभवा यमप्रकृतिका मीतिर्न कोपीत्यर्थः। क्व सति तीर्थेभ्यो गंगादिभ्योऽप्यधिक पावने मिमङ्क्षुं संसारेमर्त्तुमिच्छतमपि लोकं पावयति तारयति सदा सुलभे गोविन्दचरिते तमेवामृतं तत्समुद्रे चेतो हरे मनोहारिणि सति।।

गोविन्दपादार्चनचातुरीयं
सद्यः पदं यच्छतियत्तुरीयं[1]।

---

१. यछति तत्तुरीयं-क।

तदत्र चेतो भव सावधानं
भवामयेऽन्यौषधमप्रधानम्।।८।।

हरिपादपूजायां चातुर्य्यं तत्प्रसिद्धं तुरीयं पदं ब्रह्मपदं यच्छति ददाति। हे चेतस्तस्मादत्र हरिपादार्चने सावधानं तत्परं भव। यतो भवामये संसाररोगेऽन्यत् हर्यर्चनं विनौषधमप्रधानं मुख्यं न भवति।।

यो गीयते जगति दुर्द्दमया तु कालः[१]
[२]श्रीरामनाम जपतो मम यातु कालः।
शीतांशुचारुवदनां रिपुरोधमाप्तां
सीतां शुचा विरहितामिह यश्चकार।।९।।

यो रामो जगति दुर्द्दमानां दुष्टानां यातूनां रक्षसां कालो नाशको गीयते जनैः। तस्य रामस्य नाम जपतः सतो मम कालः समयो या तु गच्छतु। 'कालः पुनः कृष्णवर्णे महाकालकृतान्तयोर्सरणानेहसोरितिकोशः। यश्चन्द्ररम्यास्यां रावणगृहे रोधं प्राप्तां सीतां शुचा शोकेन विरहितां हीनां चकार।।

उच्चैस्तरां सारजनित्वकर्त्री
संपत्स्यते सा रजनिः कदा नु।
यस्यां जपन्तो नरसिंहनाम
पापं जनुः कोटिकृतं हनाम।।१०।।

उच्चैस्तरामतिशयेन सारा श्रेष्ठा जनिर्जन्म येषां ते सारजनयः उत्तमजन्मानस्तद्भावकर्त्री सा रजनी रात्रिः कदा नु संपत्स्यते भविष्यति यस्यां रात्रौ हरिनाम जपन्तो वयं जनुषां जन्मनां कोटिभिरपि कृतं पापं हनाम निवर्त्तयाम। हन्तेर्लोट्।।

त्वत्प्रेरितेन मयका कृतमद्य याव-
त्किञ्चच्छुभाशुभमथापि तथा करोमि।
मज्जन्मनः सफलतां कुरुषे न कस्मा-
न्मज्जन्मनः सरिति विष्णुपदस्थितायाम्।।११।।

हे मनः! त्वत्प्रेरितेन मयका मया 'अव्यय सर्वनाम्नाकच् प्राकटेरिति अकच्'। अद्ययावदेतद्दिनपर्यन्तं किञ्चित्छुभाशुभं पुण्यपापं कृतम्। अथ तथा तद्वत्करोम्यपि। अतो विष्णुपदस्थितायां सरिति गङ्गायां मज्जत् मज्जनं कुर्वत्सत् मज्जन्मनो मम जनेः सफलतां साफल्यं कस्मान्न कुरुषे। हरिपदेच्छित्वा मज्जन्म सफलं कुर्वित्यर्थः।।

---

१. कालो-क।

२. रामस्यनाम-क।

यत्प्रेर्यमाणमनिशं जनिशङ्कितेन
रे दुष्टमानस मया समया मुकुन्दम्।
नैव प्रयासि कतमो बत मोक्षमार्गो
दृष्टो विहाय तमतर्कितमद्वितीयम्।।१२।।

रे दुष्टमानस! जनेः सकाशात् जन्मपरम्परायाः शङ्कितेन भीतेन मयाऽनिशं निरन्तरं प्रेर्यमाणमपि त्वं मुकुन्दं समया मुकुन्दस्य समीपे न प्रयासि नैव गच्छसि यतः अतो बतेति खेदे अद्वितीयं सजातीयविजातीय भेदेरहितमतर्कितं तं विहाय कतमो मोक्षमार्गस्त्वया दृष्टः।।

बद्धे भवत्यसुमतामतिमात्रबन्धो
मुक्ते तु मुक्तिरिति चित्त तवातिशक्तिः।
बन्धे तु ते व्यसनिता न तथास्ति मुक्तौ
तद्बद्धमेव भव केशवकेलिषु त्वम्।।१३।।

हे चित्त, भवति त्वयि बद्धे सति असुमतां प्राणिनामतिमात्रमत्यन्तं बन्धः त्वयि मुक्ते तु तेषां मुक्तिः। इति तवातिशक्तिरत्यन्तं सामर्थ्यं यस्मात्ते तव तु यथा व्यसनिता सक्तिरस्ति तथा मुक्तौ न। तत्तस्मात् केशवकेलिषु हरिलीलासु बद्धमेव भव।।

एकं क्षणं हृदय तिष्ठसि चेदनन्ते
तद्दुस्तरोऽपि भवनीरनिधिर्न किंचित्।
नोचेदनेकविधदुः सहदुःखकोटी-
कल्लोललङ्घितमुपैषि दशाम शुभ्राम्।।१४।।

हे हृदय, चेदेकं क्षणमनन्ते तिष्ठसि तत्तर्हि दुस्तरोऽपि भवनीर निधिः संसारसागरो न किंचित्कर इत्यर्थः। नो चेद्धरिस्मरणाभावेऽनेकविधानां दुःसहानां दुःखानां कोटयोऽसंख्या ये कल्लोलास्तैर्लङ्घितमाक्रान्तं सदशुभ्रां दुष्टां दशामुपैषि प्राप्नोषि।

गोविन्दपादोदकबिन्दुरिन्दुः
किं दुर्निवार्यं न तमो निहन्ति।
निपीय पीयूषरसोत्तमं त-
मन्तर्महः पश्य महत्तमं तत्।।१५।।

गोविन्दचरणोदकबिन्दुरूपश्चन्द्रो दुर्निवार्यं किं तमो न निहन्ति सर्वं हन्त्येव। अमृतरसादप्युत्तमं तं पादोदकबिन्दुं पीत्वा तत्प्रसिद्धं महत्तमं महस्तेजोऽन्तर्विलोकय।।

श्रीवासुदेवं हृदयं नयन्ति
न यन्ति ते गर्भभुवं जनन्याः।
पदं तमेकं भज केशवस्य
शिवस्य नान्यो निधिरस्ति लोके।।१६।।

ये नरा हरिं हृदयं नयन्ति प्रापयन्ति स्मरन्ति ते मातुर्गर्भभूमिं न यन्ति न गच्छन्ति। तत्तस्मादेकं शिवस्य कल्याणकारिणः केशवस्य पदं गज। लोकेऽन्यो निधिर्नास्ति। 'विधिः' इति पाठे शिवस्य कल्याणस्यान्यो हरिपादभजनव्यतिरिक्तो विधिः प्रकारो नास्ति। हरिसेवयैव कल्याणाप्तिरिति भावः।।

अन्ते विमुञ्चत खवर्गविधेयताशां
न्याय्यो नृसिंहकृपयैव किलापवर्गः।
मुञ्चालमित्यवगहो न हरीति शब्दं
वक्षःस्थलस्पृशि बकी शिवकीर्तनेऽपि।।१७।।

हे जन्तवः, अन्तकालेखवर्ग विधेयताशामिन्द्रियवश्यत्वाभिलाषं मुञ्चत। विषयाभिलाषं त्यजतेत्यर्थः। यतो नृसिंहकृपयैवापवर्गो न्यायः। किल यतो बकी पूतना शिवकीर्त्तने कल्याणरूपं कीर्तनं यस्य तस्मिन्हरौ वक्षःस्थलस्पृशि हृदयस्थेऽपि सति अलं मुञ्चेत्यवक् उवाच। उक्तेर्लुङि् रूपम्। हरीति शब्दं नोवाच। तस्मादन्ते इन्द्रियवश्यत्वाभावादिदानीमारभ्य हरिः स्मर्तव्यः।।

यो देवकीमिव बकीमपि विश्वयोनिः
स्वीयं निनाय पदमुज्ज्वलयैव कीर्त्त्या।
सर्वापराधशमनं कमलालयायाः
को न श्रयेत कमनं कमनन्तमिच्छन्।।१८।।

यो हरिर्देवकीमिव पूतनामपि उज्ज्वलया बुद्ध्या स्वीयं पदं निनाय तं सर्वापराधनिवर्तकं रमायाः कमनं कान्तमनन्तं कं सुखादिपदार्थमिच्छन्को न श्रयेत न सेवेत।।

नायं नयो नयन यन्न यदूत्तमस्य
नित्यं निभालयसि निर्मलमङ्घ्रियुग्मम्।
किं वीक्षितैरवरवस्तुभिरप्रशस्तो-
दर्कैर्मनोहरतरैरपि भाविभङ्गैः।।१९।।

हे नयन नेत्र, हरेर्निर्मलं पदयुग्मं न निभालयसि न विलोकयसि न श्रयसि अयं नयो नीतिर्न भवति अवरवस्तुभिरीक्षितैः किं न किमपि। कीदृशैः। अप्रशस्त उदर्क उत्तरकालो येषां तैः। तथा मनोज्ञैरपि भावी भङ्गो येषां तैः।।

गोविन्दमेव स्तुहि वस्तु हित्वा
समस्तमन्यद्रसने स नेड्यः।
लोकत्रये कस्य पदस्य दास्यं
पुरंदरत्वादपि सुप्रशस्यम्।।२०।।

हे रसने, अन्यत् समस्तं वस्तु त्यक्त्वा गोविन्दमेव स्तुहि स्तुतिं कुरु। यद्यस्माल्लोकत्रये स कस्य नेड्यः न स्तुत्यः। अस्य हरेर्दास्यं पुरंदरत्वादिन्द्रपदादपि सुप्रशस्यं प्रशस्ततरमतस्तं स्तुहि।।

त्वमन्यशब्दग्रहतां विहाय
श्रवः शृणु श्रीपतिशीलशब्दम्।
श्रुतीति शब्दस्त्वयि चागमेऽपि
समत्वमभ्येति यतो गुणौघैः।।२१।।

हे श्रवः कर्ण, अन्यशब्दग्रहित्वं त्यक्त्वा श्रीपतिं शीलयत्यभ्यस्यति तादृशं हरिवाचकं शब्दं शृणु। यतः श्रुतिरिति शब्दस्त्वयि वेदे च गुणौघैस्तुल्यतामेति।।

दुःखाकरोषि यदरे यदुवंशरत्न-
सेवारतानविरतं विधितामुपेत्य।
दुष्कर्म किं न विदितस्तव कैटभारि-
र्यन्नाम जन्मशतसंचितपापहारि।।२२।।

अरे हीनसम्बोधने! हे दुष्कर्म, हरिभक्तिपरायणान् विधितां दैवत्वमुपेत्य प्राप्य यद्दुःखाकरोषि पीडयसि। दुःखात्प्रातिलोम्ये डाच्प्रत्ययः। तव किं कैटभारिर्हरिर्न विदितो न ज्ञातः। यस्य नाम जन्मनां शतेन संचितं पापं हरतीत्येवंशीलम्।।

मिथ्यामनोरथपथि प्रथितानुभाव
रे मोह को हरिपरेऽपि तव प्रसङ्गः।
बालातपे तिमिरमिच्छति खेलितुं चे-
त्सौख्यं लभेत कतरच्छ्रितरत्नवेदि।।२३।।

मिथ्यैव मनोरथमार्गे प्रथितः ख्यातोऽनुभावो महिमा यस्य तादृश हे मोह, हरिपरे विष्णुभक्तेऽपि तव कः प्रसङ्गः का प्रसक्तिः। किं सुखं यास्यसीत्यर्थः। अर्थान्तरमाह- चेद्यदि बालातपेऽन्धकारं क्रीडितुमिच्छति तर्हि किं सौख्यं लभेत। न किमपीत्यर्थः। किंभूतं सौख्यम्। श्रिता रत्नवेदिर्येन तादृशम्।।

एकं मुकुन्दं हृदये स्मरामि
स्मरामितेनालमितः श्रमेण।

न द्योततेऽजस्रकृतेऽपि यत्ने
खद्योततेजस्तरणेः पुरस्तात्।।२४।।

एकं मुकुन्दं हृदये स्मरामि अतो हे स्मर काम, इतो मयि अमितेन बहुलेन श्रमेणालं पूर्यताम्। दृष्टान्तमाह– तरणे रवेः. पुरस्तात् खद्योततेजो निरन्तरं यत्ने कृतेऽपि न द्योतते।।

संकल्पकल्लोलमगम्यसीमं
जायादियादोभिरतीव भीमम्।
कर्मोदकं त्वां न तृणाय मन्ये
चतुर्भुजे चित्तमिते भवाब्धे।।२५।।

हे भवाब्धे संसारसमुद्र, चतुर्भुजे चित्तमिते प्राप्ते त्वां तृणाय न मन्ये तृणतुल्यं न गणयामि। 'मन्यकर्मण्यनादरे' इति चतुर्थी। कीदृशं त्वाम्। संकल्पा एव कल्लोलास्तरङ्गा यस्य तम्। अगम्या दुष्प्रापा सीमा मर्यादा यस्य तम्। जाया स्त्री तदादय एव यादांसि जलजन्तवस्तैः कृत्वा अतिभयंकरम्। कर्माण्येवोदकानि यत्र तम्।।

संसारसत्रे॰षडमी अमित्रा
मदादयो मामदया लुठन्ति।
आशा तवैवास्ति चराचराणा–
माधार राधावर धाव रक्ष।।२६।।

यतः संसारवने अमी मदादयः षडमित्राः शत्रवो निर्दयाः सन्तो मां लुठन्ति। '‘लुठचौर्ये'। 'कामक्रोधौ लोभमोहौ तत्परं मदमत्सरौ। षडमी रिपवो ज्ञेयाः संसाराब्धौ निमज्जाताम्'। इति शारदोक्तेः। अतो हे स्थावरजङ्गमानामाधार, हे राधावर, तवैव आशास्ति अतस्त्वं धाव मां रक्ष।।

संपापसंकल्पमलीमसेऽपि
मनस्यनन्त स्मृतिमेषि मे यत्।
स्वामी दयालुर्भवता समः कः
को वापराधी मम साम्यमेति।।२७।।

सम्यग्यः पापसंकल्पस्तेन मलिने मनसि हे अनन्त, चेत्त्वं स्मृतिमेषि प्राप्नोषि तर्हि तवोचितमिति शेषः। यतो भवता समः को दयालुः स्वामी। अपराधी को वा मम साम्यमेति। अतोऽहं त्वयैवानुकम्प्य इति भावः।।

कृष्ण त्वदीयं चरणारविन्दं
चेतोहरं चेतसि चिन्तयन्तः।

सन्तः पदं तत्समवाप्नुवन्ति
ब्रह्मादयोऽपि स्पृहयन्ति यस्मै।।२८।।

हे कृष्ण, सन्तः साधवश्चेतोहरं मनोहरं त्वदीयं पादाब्जं चित्ते चिन्तयन्तः सन्तस्तत्पदं प्राप्नुवन्ति यस्मै पदाय ब्रह्मादयोऽपि स्पृहयन्ति। 'स्पृहेरीप्सितः' इति सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी।।

येषां न माता न पिता न बन्धु-
र्न सोदरो नापि धनं न विद्या।
न ते गुणो नापि शरीरशक्ति-
स्तेषां त्वमेवाच्युत सर्वमेव।।२९।।

येषां जनानां मातृपितृबन्धुसहोदरधनविद्याः न, ते प्रसिद्धा विनयादयोऽपि गुणा न, नापि देहसामर्थ्यं हे अच्युत, तेषां सर्वं त्वमेव।।

केऽप्यू रमावर नराश्चरणप्रणत्या
न ब्रह्मणः पदमदभ्रदयावतस्ते।
केयूरभूषितकरेण कृताभयस्य
कृत्वापि पातकमतर्कितशक्तिभाजः।।३०।।

हे रमावर! श्रीपते, के नरा जनास्तव चरणनमनेन पातकं कृत्वापि ब्रह्मपदं नायुर्न प्रापुः। यातेर्लुङि रूपम्। किंभूतस्य ते अदभ्रदयावतो बहुदयायुक्तस्य। 'अदभ्रं बहुलं बहु' इत्यमरः। केयूरेणाङ्गदेन भूषितो यः करस्तेन कृताभयदानस्य। तथा अतर्कितां शक्तिं भजतीति तस्य।।

अत्यन्तविह्वलमिदं विषयाङ्कुशैर्य-
दाकृष्यते भृशमुदभवान्तकेन।
गोपीमनोहर मनोऽहरहर्मदीयं-
त्वत्पादपङ्कजपरागसरागमस्तु।।३१।।

हे गोपीमनोहर, मदीय मन उदग्रो यो भवान्तकः संसाररूपोऽन्तकस्तेन विषयाङ्कुशैः शब्दादिरूप सृणिभिरहरहः प्रत्यहमाकृष्यते ततोऽत्यन्तविह्वलमिदं तव चरणकमलपरागे सप्रेमास्तु। ततो दुःखाभाव इत्यर्थः।।

लक्ष्मीनिवास जनजीवन दीनबन्धो
बन्धोऽयमुत्कटतमो भवसंभवो मे।
तवन्मन्त्रनामजपतोऽस्तु तदस्य नाशो
नाशोचिता त्रिभुवने त्वयि केन कर्तुम्।।३२।।

हे राधावर, हे जनानां जीवन, हे दीनबन्धो, मे मम भवसंभवः संसारोत्थ उत्कटस्तमस्तीव्रतरोऽयं बन्धोऽस्ति तत्तस्मात्त्वन्मन्त्रान्नामानि च जपतो ममास्य बन्धस्य नाशोऽस्तु। मन्त्राश्च नामानि च तेषां समाहारो मन्त्रनाम। त्रिभुवने त्वयि केन पुंसा आशा कर्तुं नोचिता।।

गोविन्द गङ्गा तुलसीतरङ्ग-
त्तरङ्गमालामिलितं मदीयम्।
मनस्त्वदीये चरणारविन्दे
तापत्रयत्रासविमुक्तमस्तु।।३३।।

हे गोविन्द, मदीयं मनस्त्वदीये पादपद्मे वर्तमानमतएव गङ्गायास्तुलस्या सह तरङ्गन्ती चञ्चला या तरङ्गमाला तया मिलितमतस्तापत्रयादाध्यामिकादेर्यस्त्रासस्ततो विमुक्तमस्तु।।

गोपालबाल बलवत्तरकालकोप-
लोपाय कोऽपि नहि कायवतामुपायः।
एकं विहाय महनीयमुदग्रदुःख-
संघातघातचतुरं चरणाम्बुजं ते।।३४।।

पादाम्बुजन्म भजतामज तावकीनं
दीनार्तिभञ्जनशुभं जनदुःखहन्तुः।
आयान्तु यान्तु दिवसा भवसागरोऽपि
यस्मिन्परागति परा गतिरस्त्यवश्यम्।।३५।।

कर्मानुरूपजनियुक्ततया न यामि
त्वत्पादसेवनसुधालहरीविहारम्।
यस्मिन्ननेहसि विना स्मरेण तत्र
दीने मयि स्मयमनन्त दया विधेया।।३६।।

कुरु मे परमेश्वर प्रियं हृदये सन्निवसन्सुनिश्चलम्।
हर पातकवृत्रमत्रसत्प्रभयाप्यन्यभुवा यदत्र सत्।।३७।।

हे परमेश्वर, मे हृदये सुनिश्चलं संनिवसन् प्रियं कुरु। किं प्रियमत आह- यदन्य(र्क) भुवा रव्युत्थया प्रभया अत्रसदभीतं तत्पातकवृत्रं पापान्धकारम्। 'वृत्रो दैत्येऽन्धकारे च' इति कोषः। [illegible] [illegible] [illegible]र्तमानं हर नाशय।।

मयि पापिनि कापि निष्कृतिर्न तव ध्यानमृते रमापते।
किमु कर्दमलेपितं वपुर्विमलं वारि विनापि जायते।।३८।।

अयि मानसमच्युत क्षणं
कुरु कारुण्यगुणानुगुम्फितम्।
सदया हि भवन्ति साधवः
कलयन्तः किल दीनवेदनाः।।३९।।

स्वयं भवाब्धिः स्वयमेव नेता
स्वयं सतां तारयिता नृसिंहः।
स्वयं च सौहार्दनिधिः स्वयं नौः
सर्वात्मना तेन तमेव सेवे।।४०।।

हे लक्ष्मीवर हे दयागृहययुर्माया विनो दानवाः
कुर्वन्तस्त्वयि वैरमेव विरता वेदोदिताद्वर्त्मनः।
जीवा ये तु निरन्तरं नवनवानन्दास्तवैव स्तवै-
स्तेषां दर्शनमात्रमप्यनुचितं किं देव तन्मादृशाम्।।४१।।

सेवे देव तवैव पादकमलं कल्याणकोटीकुलम्
श्रीमद्रक्ततलं परिष्टिपरतो लक्ष्मीकरात्कोमलम्।
यद्दीव्यत्तुलसीदलं सुरसरित्कल्लोलकौतूहलम्
कैवल्यैकफलं नखावलिविभाविध्वस्तमायाबलम्।।४२।।

इति श्रीपुरुषोत्तम कृतायां विष्णुभक्तिकल्पलतायां
''भक्त्युपद्रव निराकरणो'' नाम चतुर्थः स्तबकः।

पञ्चमः स्तबकः

लक्ष्मीलावण्यलीलारसविसररसः साधु पेपीयमानं
दृग्भ्यां साक्षान्मुरारेर्दिनकररजनीकामुकाभ्यां करौघैः
कृष्णत्वं यद्विपाकादलभत सितमप्यस्य वर्ष्म प्रभाम्भो
धाराभिर्निर्यदेतद्भवतु भवदवज्वालजालप्रशान्त्यै॥१॥

श्रुत्वा नाकनितम्बिनीनयनयोः पीयूषपानायते
मत्वा मङ्गलमातनोति मरुतामास्थाय सुत्रामताम्।
जानीते जगदीशितुर्यदतुलं जन्तुर्जपित्वा पदं
तन्नारायणनाम काममभिमतां सिद्धिं न दत्ते सताम्॥२॥

यद्दूरीकुरुते भवान्धतमसं यस्य प्रकाशोऽक्षरं
तद्ब्रह्मैव परं यदत्र ददते लिप्साधिकं लीलया।
यस्यानेकगुणानलं न नलिनोद्भूतोऽपिवक्तुं प्रभु-
स्तत्किं पामर रामरत्नमनिशं हृद्येव न स्थाप्यते॥३॥

यज्ञस्तम्भवती कृता वसुमती तेनाखिला संयुगे
सुप्तं तेन सपत्नदर्पदलनोद्दामप्रतिष्ठावता।
वित्तं वेदविदे व्यतारि विधिवद्ब्रह्मार्षणन्यायव-
त्कंसध्वंसकृतः कृतः कृतधिया येन प्रणामः सकृत्॥४॥

धन्या धर्मधुरन्धरेण धरणी तेनोर्ध्वलोकाधिका
माता तस्य कृतार्थतामुपगता वीतापदः पूर्वजाः।
तस्मिल्लोचनमार्गमागतवति प्रायेण पापक्षयो
यस्योदारमतेर्नरस्य रमते चित्ते मुरस्य द्विषन्॥५॥

चेतो यस्य जनार्दने जनमनः पीयूषपानाधिक-
ध्यानानन्दपदे निरस्तनिखिलाद्वैतप्रतिष्ठास्पदे।
किं पापेन किमन्तकेन बलिना दैवेन वा तस्य किम्॥६॥

यस्य स्वान्तमनन्ततो न चलितं लीलावतीलोचनै-
रुच्चैःसूचितनिश्चलप्रियतया बालस्य चालिङ्गनैः।
स्मारस्फारतयाथवातिबलवद्दारिद्र्यदावानल-
ज्वालाभी रिपुभीतिभिश्च पुरुषो धन्यः स एव क्षितौ॥७॥

पीयूषं परिहाय हायमधमस्तृष्णाभिभूतो जनः
कूपं काङ्क्षति कर्दमाकुलमलं दैवेन निर्वञ्चितः।
हित्वा हृद्गतमेव देवमतुलानन्दप्रदं केशवं
भूतेष्वात्महिताय ताम्यति मतित्यक्तो हि संसारिषु॥८॥

तावद्दैन्य मदन्यतो न भवतो गन्तव्यमव्याहता-
नन्दं नन्द दरिद्र दुःसहतरं दुःखं च तावद्ददत्।
तावद्गर्ज्जतु दुज्जनो मम विपद्वृध्या रणत्कारकृ-
द्यावन्मामवलोकते न कृपया कृष्णः कृतायां स्तुतौ॥९॥

मातर्मेदिनि देवकीतनयतामासाद्य देवो दया-
सिन्धुः सिन्धुरलीलया त्वयि पदव्रातानतानीत्तु यान्।
एकं तच्चरणारविन्दमधुनो वाल्लभ्यलभ्याल्लवं
दत्त्वा मुक्तिदमाशु मह्यमनिशं मद्द्वारमुक्ता भव॥१०॥

यद्धीमावरजो रजोधिकमनाः सन्यासिवेषं दध-
त्कन्यामेकतमः समस्तसुभटश्रेणीशिरः शेखरे।
गर्जत्येव बलेऽबलेपविद्युरो हृत्वासुभद्रामगा-
न्नागोऽनन्तवशंगतो जयति सा नारायणस्वमिता॥११॥

कारागारगता हृतामरमुदो भौमस्य यद्धीरवो
भर्त्तारं भगवन्तमन्तकभयातङ्कापहं लेभिरे।
हृद्वृत्तिश्चतुराननस्य नितरां यद्दास्यमेवेहते-
ऽप्येकाग्र्यं कलितस्मृतेर्विजयते सोऽयं प्रसादः प्रभोः॥१२॥

भौमस्य नरकासुरस्य कारागारगृहस्था भीरवो नार्यः। 'नारी भीरुर्भामिनी च' इति हलायुधः। अन्तकोत्पन्नमातङ्कं भयमपहन्ति तं नरकभीति हर्तारं हरिं भर्त्तारं यल्लेभिरे प्रापुः। एकाग्र्यं यथा तथा कलिता स्मृतिर्येन तस्य निरन्तरस्मरणशीलस्य चतुर्मुखस्य मनोवृत्तिर्यद्दास्यमेवेहते चेष्टते सोऽयं प्रभोः प्रसादो विजयते॥

कंसः किं सुकृतं चकार भगिनीं कारागृहे योऽरुण-
ज्जामेयानपि जघ्निवान्पितुरभूत्सैराज्यसर्वंकषः।
अन्यत्तस्य किमुच्यते तदपि मामेष क्षयं नेष्यती-
त्यत्यन्तस्मृतकेशवः शिवतमं यद्धामतज्जग्मिवान्॥१३॥

कंसः किं पुण्यं चकार, न किमपि। यतो भगिनीं देवकीं कारागार योऽरुणद्धरोध, जामेयान् 'जामिः स्वसृकुलस्त्रियोः' तदपत्यानि जामेयास्तान् जघान, पितुरुग्रसेनस्य सौराज्यं सर्वं कषति बलाद्गृह्णाति तादृशोऽभूत्। 'करीषकूलसर्वाभ्रेषु कषः' इति खश्प्रत्ययः। तस्य कंसस्यान्यत्पापं किमुच्यते। यद्यप्येतादृशः, तदप्येष कृष्णो मां क्षयं नाशं नेष्यति संारयिष्यतीति भयेनात्यन्तं स्मृतः केशवो येन सः कंसः शिवतमं यद्धाम ब्रह्माख्यं तज्जग्मिवान् प्राप। ईदृशो हरिस्मरणप्रभाव इत्यर्थः॥

ना रायः स्मरणं करोति हि यथा नारायणस्य प्रभो-
रेवं चेत्कुरुते कलामपि तदा दारिद्र्यदारि द्रुतम्।
प्राप्य श्री करुणा कटाक्षकलनाकल्याणमक्षुद्रया
सम्पत्त्यैलविलं विलङ्घ्य विलसत्याचन्द्रतारं सुखी॥१४॥

ना पुमान् यथा रायो धनस्य स्मरणं करोति तथा कलां लेशमपि यदि नारायणस्य हरेः स्मृतिं करोति तदा श्रीयुक्तो यः करुणाकटाक्षस्तत्कलनया दारिद्र्यनाशकं कल्याणं मङ्गलं प्राप्याक्षुद्रया महत्या सम्पत्या ऐलविलं कुवेरमतिक्रम्य आचन्द्रतारं कल्पान्तपर्यन्तं सुखी विलसति। 'यक्षैकपिङ्गैलविलश्रीदपुण्यजनेश्वराः' इत्यमरः॥

गङ्गे सन्निहितासि संततमपि श्रीकृष्णपदाम्बुजे
लक्ष्मि त्वं ललनाललाम लभसे लावण्यमस्योरसि।
प्रेमा तस्य च मातरस्ति तुलसि त्वय्युत्तरस्तत्कथं
विज्ञप्तिर्न विधीयते करुणया मे दुःखविध्वंसिनी॥ १५॥

हे गङ्गे, त्वं हरिचरणे निरन्तरं निकटासि। हे लक्ष्मि, ललनानां नारीणां ललाम स्त्रीरत्नभूता त्वमस्य हरेरुरसि लावण्यं शोभां लभसे। हे तुलसि मातः, तस्य हरेः प्रेमात्वय्यधिकोऽस्ति। तत्तर्हि करुणया कृत्वा मम दुःखनाशिनी विज्ञप्तिर्भवतीभिः किं न क्रियते। सर्वथा मम दुःखनाशाय हरिर्विज्ञपनीय इति भावः। 'ललामवल्ललामश्च शृङ्गे चिह्नपताकयोः। रम्ये प्रधाने भूषायां पुण्ड्रे पृच्छप्रभावयोः'॥

अन्तश्चिन्तयतामनन्तमनिशं श्वासा निवासाः श्रियो
जन्तूनां यति यन्ति यागयुगलैस्ते तुल्यतां तन्वते।
स्पर्धन्ते मृडमौलिमण्डननदीवीचीभिरुच्चैः पुनः
पावित्र्येण भवाम्बुदव्युदसनोद्दामैकदेशौजसः॥१६॥

नित्यं चित्ते हरिं स्मरतां प्रणिनां श्रियः शोभाया निवासा आधारभूता यति यावन्तः श्वासा यन्ति गच्छन्ति ते यागयुग्मैः सादृश्यं कुर्वते। हरिं स्मरतां प्रतिश्वासं यागद्वयफलमित्यर्थः। किंच ते श्वासाः शिवस्य मौलेर्मण्डनभूता या नदी गङ्गा तद्वीचीभिः सह पावित्र्येण स्पर्धन्ते। कीदृशाः - भवाम्बुदस्य संसारमेघस्य व्युदसने

नाशे उद्दाममुत्कटमेकदेशौज एक भागस्थं तेजो येषाम्। येषामेकदेशस्थं तेजः संसारमेघं शमयति॥

मुक्त्वा माधवसेवनं मतिमतां मन्तव्यमन्तव्यथाः
किञ्चिद्वारयितुं समर्थमपरं पुण्यं न लोकत्रये।
संतप्ते तपतीव्रतापतपनप्रद्योततो भूतले
तापं हर्त्तुमलं विना जलधरं दृष्टः कुतः केन कः॥१७॥

लोकत्रये एकं हरिसेवनं मुक्त्वान्ते मरणे या व्यथास्ता वारयितुं समर्थमपरं किंचित्पुण्यं मतिमताम्। कर्तरि षष्ठी। पुंसां न मन्तव्यम्॥ तत्र दृष्टान्तः – तपे ग्रीष्मे तीव्रस्तापो यस्य तपनस्य भानोः प्रद्योततः प्रद्योतेनातपेन संतप्ते भूतले मेघं विना तापं हर्तुं केन कः कुतो दृष्टः। न केनापि न कोऽपीत्यर्थः। तथा हरिसेवां विनान्तपीडानाशकं किमपि नास्तीति भावः॥

धातुप्रत्यययोगतो रचयितुं रूपाणि लोकत्रये
विद्वांसो विविधा विधातुरधिकं धीकौतुकं तु प्रभोः।
संख्यालोपसमासकालपदभिल्लिङ्गादिभावान्वितं
रूपं प्रत्यययोजनाविरहितैर्निर्माति यो धातुभिः॥१८॥

धातुर्भूवादिः, प्रत्ययस्तिवादिः तयोर्योगाद्रूपाणि भवत्यादीनि रचयितुं लोकत्रये विद्वांसो बुधा विविधा वर्तन्ते। परं तु विधातुः कर्तुः प्रभोरीशस्य हरेस्तु धीकौतुकं बुद्धिविख्यातिरधिकम्। तदेवाह- यो विधाता प्रत्यययोजनाविरहितैर्ज्ञानसम्बन्ध-शून्यैरचेतनैः। जडैरिति यावत्। धातुभिर्महाभूतैः संख्यैकत्वादिः, लोपो नाशः, समासः समर्थनम्, कालः समयोऽवस्थादिकः, पदभिद्वस्तुभेदः, लिङ्गादि स्त्रीत्वादि, भावो जन्म, एतैर्युक्तं रूपं मनुष्यपश्वादि निर्माति करोति॥ 'धातू रसादौ श्लेष्मादौ भ्वादौ ग्रावविकारयोः। महाभूतेषु लोकेषु शब्दादाविन्द्रियेऽस्थनि॥' इति कोषः। 'कौतुकं नर्मणीच्छायामुत्सवे कुतुके मुदि। पारम्पर्यागते ख्याते मङ्गलोद्वाहसूत्रयोः॥' इति च। 'कालः कृष्णे महाकाले कृतान्ते समये मृतौ।' पदं स्थाने विभक्त्यन्ते शब्दे वाक्येऽङ्कवस्तुनोः। भेदो विदारणे वेधे उपजापविशेषयोः।' 'लिङ्गं पुंस्त्वादिचिह्नयोः। शिवमूर्तावनुमाने सांख्योक्तप्रकृतावपि' इति च। 'भावोऽभिप्रायवस्तुनोः। स्वभावजन्मसत्तात्मक्रियालीलाविभूतिषु। चेष्टायोन्योर्बुधे जन्तौ शृङ्गारादेश्च कारणे। शब्दवृत्तिहेतौ च।' 'समासः स्यादैकपद्ये संक्षेपे च समर्थने'॥

तस्मिन्नस्मितयाभिभूतहृदया रूपे कृतप्रत्यया
मन्दाः केऽपि तदाशयैकशरणा दम्भादयो दस्यवः।
बाधन्ते बुधबोधबन्धुरविधिव्यासेधिमेधाविनो
लोकं कोकमिवानिवार्यविपदं यामा निशामाश्रिताः॥१९॥

तस्मिन्देहे स्मितयाहं भावेनाभिभूतं पराभूतं हृदयं यैस्तै रूपे आकारे नरादिके एव कृतः प्रत्ययो विश्वासो यैस्ते, मन्दा दुष्टास्तेषां जन्तूनामाशयश्चित्तमेकं शरणं येषां ते, तथा बुधानां ज्ञानिनां बोधाय ज्ञानप्राप्तये समीचीनो यो विधिः प्रकारः श्रवणादिस्तद्व्याषेधिनी ज्ञानप्रकारनिवर्तिका मेधा बुद्धिर्येषां ते कामदम्भादयो दस्यवश्चौरा अनिवार्यविपदमसाध्यकष्टयुक्तं लोकं बाधन्ते पीडयन्ति॥ अत्र दृष्टान्तः - यथा निशामाश्रिता यामारात्रिप्रहराः कोकं चक्रवाकं बाधन्ते। तद्वद्देहमाश्रिताः सन्तो ज्ञानं बाधन्त इत्याशयः॥

मज्जन्तु प्रबलप्रभावनिहतानेकैनासि न्यायतो
निर्णीते निगमैर्नरा भवपराभूताः सुतीर्थान्तरे।
मज्जन्तुस्तु मधुद्विषः पदनरवप्रेङ्खत्प्रभामण्डली-
पूरस्कारतरङ्गसंगमचमत्कारोत्सवं गाहते॥२०॥

संसारपीडिता नराः शास्त्रैर्निर्णीते प्रबलप्रतापेन निहतान्यनेकान्येनांसि पापानि येन तादृशे तीर्थान्तरे प्रयागादौ मज्जन्तु स्नान्तु। मज्जन्तुरहमेव जन्तुस्तु मधुद्विषो हरेः पदनखानां प्रेङ्खन्ती या प्रभामण्डली कान्तीपटली तस्याः पूरस्य स्फारा वृद्धा ये तरङ्गास्तेषां संगम एव चमत्कारोत्सवस्तं गाहते हरिचरणभक्तिमेव गाहते॥

लक्ष्मीभर्त्तरि भक्तिमेव भजतां यज्जायते जन्मिना-
मानैश्वर्यमरातिभीतिरकुलस्फीतिः प्रतिष्ठाच्युतिः।
नासीरः स समग्रसम्पदसमुत्पत्तेर्यथातेजसो
धूमः स्यात्प्रथमो यथोपनिषदः पूर्वैव भूमिर्भिदाम्॥२१॥

हरौ भक्तिं भजतां जन्मिनां प्राणिनां यदानैश्वर्यमसामर्थ्यम्, अरातिभीतिः शत्रुभयम्, अकुलस्फीतिः कुलवृद्धेरभावः, प्रतिष्ठानाशः, इत्यादि दुःखं जायते, स समस्तसंपदुदधेः सर्वहर्षस्योत्पत्तेर्नासीरः सेनामुखम्। हरिभक्तौ क्रियमाणायां दुःखाविर्भावः सुखप्रागभावतया ज्ञेय इत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः- वह्नेस्तेजसो यथा प्रथमो धूमो जायते। यथा चोपनिषदोऽद्वैतप्रतिष्ठापिकायाः पूर्वा आदौ पूर्वपक्षत्वेन भिदां भूमिर्भेदप्रतिपादनम्॥

गङ्गासागरसंगमः सुमहितं काशीतलं शीतलं
दाहाय प्रबलैनसौ न सरितः शेषा विशेषार्थदाः।
यस्य ध्यानमृते तमच्युतमहं हृत्कुञ्जकण्ठीरवं
कुर्वे यत्पदवीक्षणेन पदवी दृश्यैव मुक्त्यद्भुता॥२२॥

गङ्गासमुद्रसंगमः, शीतलं सुमहितं पूज्यं काशीतलम्, विशेषार्थप्रदाः शेषाः सरितो यमुनाद्याः, एते यस्य हरेर्ध्यानं विना प्रबलपातकनाशाय न भवन्ति, तं हरिं हृदयलक्षणकुञ्जे कण्ठीरवं सिंहं कुर्वे हृदि स्थापयामि। यत्पददर्शनेन मुक्त्वा कृत्वाद्भुता या पदवीं मुक्तिपदं दृश्यैव भवति। यस्य चरणभजनेन साक्षात्कारो

भवतीत्यर्थः॥

द्रव्येणापि विना भवन्ति सुलभान्यम्भांसि भूमीतले
प्राप्याः पादपपल्लवाः प्रभुरपि प्रौढप्रभावोऽच्युतः।
स्यादेवाच्चितयाऽर्च्चयाच्चिंततरस्तस्मिन्भवेदर्च्चिते
मोक्षो मङ्क्षु मुमुक्षितस्य नियतं तत्र प्रमाणं श्रुतिः॥२३॥

द्रव्यं विना भूतले जलानि सुलभानि, वृक्षपल्लवाः पूजार्थं प्राप्याः, प्रभुर्हरिरपि प्रौढप्रताप:, अर्चया प्रतिमया पूजितयाप्यच्युतोऽर्चिततरोऽत्यन्तं पूज्यः स्यात्। तस्मिन्हरौ पूजिते मुमुक्षितस्य मोक्षेच्छोर्मङ्क्षु शीघ्रं मोक्षो भवेत्। नियतं निश्चितं तत्र श्रुतिर्वेद एव प्रमाणम्॥

मार त्वं मृदुमानसानपि मुनीन्मृद्नासि यन्मार्गणै-
स्तेन त्वज्जनकोऽपि कोपितमनास्त्वद्वृत्ततो वर्त्तते।
यद्याता यमयातनां तनुभृतस्त्वामाश्रितास्त्वत्त्यजो
नीता लोकमशोकमत्रभवता नारायणेन ध्रुवं॥२४॥

हे मारकाम, त्वं कोमलचेतसोऽपि मुनीन्बाणैर्यत्पीडयसि, तेन हेतुना त्वद्वृत्ततस्त्वदाचरणेन त्वत्पिता हरिः क्रुद्धचित्तो वर्तते मयि हरेः कोपः कथं ज्ञातः, तत्राह–यतस्त्वामाश्रिताः कामरता जना यमपीडां प्राप्ताः। त्वत्त्यजो निष्काया जना अत्रभवता पूज्येन हरिणाशोकं मोक्षं प्रापिताः। अतो ध्रुवं ज्ञायते हरिस्त्वयि कुपितः॥

लक्ष्मि त्वं यदपीपलः पलभुजः पौलस्त्यपूर्वानमू-
नक्षीणैर्विभवैरशूशुष ऋषीनप्यन्नतृप्तिं विना।
मातुस्तेऽनुचितं समस्तजगतामेतच्चिरं चिन्तयन्
लङ्कायां पुरि शासनं तव धवश्चक्रे भवन्राघवः॥२५॥

हे लक्ष्मि, पौलस्त्यपूर्वान्मूनरावणादीन्पलभुजो राक्षसान्पूर्णैर्विभवैः समृद्धिभिस्त्वं यदपीपलः पालितवत्यसि। ऋषीन्विश्वामित्रादीनन्नतृप्तिं विना शूशुषः शोषितवत्यसि। सर्वजगतां मातुस्तवैतद्रक्षः पालनमृषिशोषणं चानुचितम्। एतच्चिरं चिन्तयंस्तव ध–वस्तव भर्ता रामो भवँल्लङ्कायां तव शासनं शिक्षणं चक्रे॥

तत्र युक्तिमाह–

नोचेदेष दशास्यतामनुभवन्यादो भवाम्भोनिधे-
र्लङ्केशः क्व गिरामगोचरतरस्त्वद्वल्लभो वा कुतः।
तस्येच्छामपहाय कस्त्रिभुवने हर्त्तुं जनस्त्वामलं
तन्मातः कथमीदृशं पुनरपि प्रारभ्यते प्रस्तुतम्॥२६॥

चेद्यद्येवं न स्यात्तर्हि दशास्यतां रावणभावमनुभवन्संसारसमुद्रस्य यादो जलजीवभूतो

लङ्केशो रावणः क्व, गिरां वाचामगोचरतरोऽत्यन्तमविषयस्तव भर्ता रामः क्व। महदन्तरमनयोः। तस्य रामस्येच्छां विना त्रैलोक्ये त्वां हर्त्तुं हे मातः को वा समर्थो न कोऽपीत्यर्थः। तत्तस्मादीदृशं प्रस्तुतमुपक्रान्तं पुनरपि कथं प्रारभ्यते। पापिपालनं धर्मिशोषणं च न कर्तव्यमित्यर्थः॥

त्वं मूलप्रकृतिः पुराणपुरुषो नारायणोऽयं विधु-
र्वह्निस्त्वं स च बिन्दुरिन्दुवदने नादात्मकं ते वपुः।
मातः किं बहुना चराचरमिदं जातं युवाभ्यां यत-
स्तस्मादौरसपुत्रवन्निजतया पोष्यं विभेदं विना॥२७॥

तत्त्वं मातरनन्तमन्तरनिशं निध्यायतामायता-
वालाक्य स्थितिमेनमेव समया देवं दयासागरम्।
अप्येतन्न विचिन्तयस्यधिजगत्येते दरिद्रार्दिता
दत्त्वा पर्यनुयेगमच्युतपुरो मां ह्लेपयिष्यन्ति यत्॥२८॥

मातर्मङ्गलदेवते मधुरया दृष्ट्या मनुष्या मुदा
वीक्ष्यन्ते भवदीक्षिताः शतमखीभावाय ते दीक्षिताः।
दोषस्तेषु गुणायते रिपुरपि प्रायेण मित्रायते
व्यालो रज्जवति क्षितिस्त्रिदिवति क्षोणीपतिर्दासति॥२९॥

अप्येकक्षणमेधि रे मधुकरः श्रीमन्मधुद्वेषिणः
पादाम्भोजयुगे धिगेव कमलाकाङ्क्षाकुलत्वं तव।
यद्भूताभ्युदयाय भूरिविभवैराविर्भवेद्भार्गवी
भक्त्या भर्त्तुरसावसाधुभिरभिप्रायैः परैः पूर्यताम्॥३०॥

दूरं याहि दरिद्र दीर्णहृदयं दौर्भाग्य भङ्गं भज
व्याधे लावणसैन्धवीषु लहरीष्वापद्यतां निह्नवः।
शेषं भ्रंशमुपैतु युष्मदुपमं नारायणाराधने
वैयग्र्यं व्यवहाय लग्नमनसो जाता वयं सर्वथा॥३१॥

दयालुर्देव त्वं क इव हृदयालुस्त्वदपरो
रमा यस्यादेशोत्सवभवनवानन्दलहरी।
अधर्मो यन्नाम्ना विलयभयते माधव सदा
तदप्येतत्सीदत्यहह भुवनं त्वत्कपितृकम्॥३२॥

प्रमोदाय प्रायः प्रभवतु वधूनेत्रनलिनो-
ल्लसल्लक्ष्मीलीलाकमलमधुपश्रेणिसुभगः।

कटाक्षः केषांचित्कृतसुकृतसंघातवशतो
हरिध्यानं मुक्त्वा मम किमपि नायाति हृदये॥३३॥

मुरारातिर्भाति श्रुतिमुकुटमाणिक्यकिरणा-
वलीभिर्व्याश्लिष्यश्चरणनखचन्द्रद्युतिचयैः।
भजज्जन्तुस्वान्तोत्कटकुहरतो मोहतिमिरं
निरस्यन्नीरन्ध्रैर्हृदि यदि तदिष्टं किमितरत्॥३४॥

यछक्यं नैव वाचं यमविमलमनः संपरित्यज्यबद्धुं
नैर्गुण्यादेव बन्धं व्रजति पुनरहो न प्रसङ्गाद्गुणानाम्।
यस्मिन्बद्धे विमुक्तिर्भवति तनुभृतां यत्त्रिलोक्याममूल्यं
कौशल्यागर्भरत्नं मम हरतु तमः स्तोममत्यद्भुतश्रि॥३५॥

ये जन्मान्तरपर्युदञ्चनवशादायान्ति जायादितां
जीवास्तेष्वपि मातृशासितमिदं चेतो ममत्वाकुलम्।
सर्वेषां हि न तू कथं तनुभृतां चौरेष्वपीदृग्रसं
तेऽप्येवं भवितार एव धिगिमां चेष्टां विवेकोज्झिताम्॥३६॥

नित्यं हृत्कमलं कृतार्थयतु मे देवो भवानीपति-
र्यस्मिन्मार्गमिते मतेर्विरमति द्रागेव माया यया।
हर्त्तुं बोधयनं निबध्य बहुधा पाशैः प्रमादादिभि-
र्मोहाब्धौ विषयैर्विलोक्य विवशं व्याक्षिप्यते विष्टपम्॥३७॥

पूर्वो ह्रस्व इतश्च दीर्घ इतरो नैव क्वचिद्विद्यते
कस्यानेन सवर्णता त्रिभुवने को वा समानोऽमुना।
अन्तः स्थायिनि घोषवत्यविरतं लोकोपचारात्मनः
संज्ञासन्धिसमाप्तये प्रतिजनुः किं नात्र तत्स्थीयते॥३८॥

इति श्री ''विष्णुभक्तिकल्पलताख्येप्रबन्धे'' कवि श्रीपुरुषोत्तमकृतौ''गौरवदर्श'' नाम पञ्चमः स्तबकः।

षष्ठः स्तबकः

ये संसारतमिस्रतीव्रतपना ये मुक्तिलक्ष्मीलस-
न्मुक्ताहारकणाः प्रणामनिपुणप्राणिप्रसादोन्मुखाः।
अद्वैतागमवाक्यदीपकदशानिर्माणिसूत्राणि ये
ते गोविन्दगुणाः प्रमोदमतुलं कुर्वन्तु वः सर्वदा॥१॥

कृष्ण त्वत्करुणाकटाक्षलहरीलीलालवाय स्पृहां
कुर्वन्तः कमलासनप्रभृतयो देवाः स्तवस्तिन्वते।
एकस्तत्तव पादपद्मरजसां गङ्गाम्बुना मिश्रितो
वा तोद्धूतकणः कृतार्थयतु मां कोऽपि प्रणामानतम्॥२॥

त्वं राजा भुवनेष्वतो भुवि तवाऽवात्सं कुटुम्बीभव-
न्दुष्पूरोदरपूरणाय वृषलः क्षेत्री खलेषु स्थितः।
निष्पन्नं भवतो निवेदितवतो मे कर्मबीजैरपि
क्षीणं तत्तव सेवनव्यसनिनं मामच्युताङ्गीकुरु॥३॥

न्यायोऽयं निरणायि नैकनिगमैर्नारायणानश्वरः
कर्त्तारं तदुपैति कर्म कलितं यद्येन यादृग्यथा।
त्वामेव स्मरतो ममेह विगतोऽनेहा महानप्यहो
मच्चिन्ता निमिषार्द्धमेकमपि किं तत्तन्यते न त्वया॥४॥

श्रीविष्णो जगदेकजीवन घनानन्दैकदीक्षागुरो
मूर्छन्मोहमहान्धकारतरणे कारूण्यरत्नाकर।
ग्राहव्याहतचेष्टितद्विपविपद्विछेददक्ष प्रभो
कस्याग्रे भवसम्भवः परिभवस्त्वामन्तरेणोच्यते॥५॥

सध्रीचीर्दुःखवीचीरतिशयविषमा विक्षिपन्व्याकुलत्वं
गच्छन्नच्छन्दतः स्वादधिभवजलधि त्वां मधुद्वेषणैषः।
स्मर्त्तुं शक्नोमि वेला मयि तव तदियं देव दातुं दयार्द्र-
दृष्टेरंशं प्रभूणां त्रिजगति करुणादानपात्रं यदार्त्तः॥६॥

देव श्रीवासुदेव ध्रुवमवति तवोदारलीलाकला य-
द्विश्वं शश्वन्निकारोद्यतदनुतनुजव्याकुलीभूतमेतत्।

तत्रैकान्तेऽनुकम्पानिगमनिगदिता न्यायदृष्ट्या निदानं
तत्त्वं विश्वोपकारव्रत वितर मयि प्राप्तदौःस्थ्येदृगंशम्॥७॥

एतन्मेऽव मुकुन्द देव हृदयं व्याप्तं विपद्वारिधे-
र्वीचीभिर्विरलेतराभिरभितो रम्भेव दीव्यद्दलैः।
विज्ञप्तिर्वरदायिनी त्वयि कृतापि स्यान्न चेत्प्राणिनां
शब्दब्रह्मणि तच्छ्रमो मतिमतामाकाशकण्डूयनम्॥८॥

यन्मे पातकमस्ति माधव तव ध्यानान्तरायीभव-
त्तत्किं देव निवार्यते न भवता भक्तानुकम्पावता।
दासे दुःसहवेदनां गतवति स्वामी समर्थोऽपि चे-
दौदासीन्यमुरीकरोति तदहो स्वस्वामिधर्मः कुतः॥९॥

यस्मिन्नः स्मृतिमेषि मेऽखिलगुरो गोविन्द तस्मिन्क्षणे
मा जीवन्निति नीतिनिर्मलमतिर्मापैतु मच्चेतसः।
जन्तुर्यत्तव सेवया विरहितो जीवत्यवश्यं न त-
त्सारं सौरभसंपदामविषयो यद्वत्स्मितं कौसुमम्॥१०॥

तावन्मे मन्तुमत्त्वं मधुमथन महद्भामि यावन्न यत्ना-
द्योगाभ्यासप्रवीणैरपि कपिलमनुव्यासपूर्वैः स्मृतं ते।
पादाम्भोजं शरण्यावधि शरणमधिष्ठानमेकं शुभानां
पश्चान्मे कैव चिन्ता तव भुवनविभो रक्षणीयस्य धर्मात्॥११॥

गोभिः शोभि तवानुवादनिबिडानन्दाभिरुद्यद्वृषं
रामोद्दामचरित्रचारु दलिताऽरिष्टं प्रभूतद्युति।
त्यक्तत्रासमघादपि प्रबलतस्त्वत्पादपद्माश्रयं
त्याज्यं गोकुलवद्गदाग्रज कदाप्येतन्नमे तन्मनः॥१२॥

सम्प्राप्तं भुवनत्रयेऽपि सुयशः सोमादातं मया
लब्धानेकसुखानुभूतिसुभगा सुत्रामलक्ष्मीरपि।
मन्ये तीर्णमशेषदुःखविषमं संसारवारांनिधिं
यद्यायाति दशास्यशात्रव तव ध्यानामृतं मे हृदि॥१३॥

चेतो मे चरितार्थयाच्युत चिरं त्वद्ध्यानबुध्यान्वितं
रूपेण प्रकटीभवन्नवभिदाभक्तिप्रतीतात्मनाम्।
येन त्वं बहुगोकुलं बहुलया वृष्ट्याकुलव्याकुलं
रक्षिष्यन्बिभरांबभूविथ गिरिं गोवर्द्धनं लीलया॥१४॥

कारुण्यामृतपूरिताक्षियुगलव्यालोलनैकद्युति-
स्पर्शोद्देशदलद्दुरन्तदुरितं दामोदरैनं तव।
तावत्पाहि कृपाहितैकनिलय त्वत्पादपद्मस्मृते-
रन्तर्यामिणि यामि निर्मलतया त्वय्येव यावल्लयम्॥१५॥
ये लक्ष्मीपतिपादपङ्कजमिलन्मन्दाकिनीमज्जनो-
द्दामानन्दभरेण भान्तिभविनां ते वासराः सार्थकाः।
सद्यः पण्डकखण्डिताधरवधूवैल्कव्यवद्ब्रह्मवि-
त्कर्मन्दिक्रियमाणकर्मवदहो शेषं जनुर्नार्थवत्॥१६॥

श्रीमच्यूतकुणेऽतिसौरभचणे कीरः कुलस्त्री धव-
ध्याने मञ्जुसरोजराजिषु यथा पुष्पंधयश्रेणयः।
वातान्दोलितवारिवाहविगलद्वारीव सारङ्गव-
ल्लक्ष्मीलालनलोल लालसमिदं त्वत्सेवने मेऽस्तु हृत्॥१७॥

साक्षाद्यस्य मनोमयी तव भवेदर्च्चा स संत्यज्यते
संसाराभिधया भयंकररुजा तैस्तैः सपर्यामृतैः।
स्नातं सर्वसुखावहैर्मुनिवराः कल्याणगीर्भिः सुराः
कल्पद्रुप्रसवैः प्रभूतमहसं संपूजयन्ति प्रभो॥१८॥

सेवा ते वासुदेवानिशमशनिरसौ प्रौढपापाचलानां
चिन्तारत्नं च साक्षाज्जगति जनमनः कामनापूरणाय।
स्फुर्ज्जद्दुःखौघवीचीविषमतमभवाम्भोधिपारावनीयं
तद्ब्रह्माद्वैततेजोमृतमयमनयैवाप्ययोगादवाप्यम्॥१९॥

विष्णो कामितकामितानि ददते लोकत्रये देवता
सा चेदस्ति तदा तदर्पितहृतौ कालः किमालस्यकृत्।
त्वद्भक्त्या फलितं तु कालकलितं न क्षीयते जन्मिना-
मिष्टं माति मनोरथस्य महिमोद्रेकान्न मार्गेऽपि च॥२०॥

लक्ष्मीकान्त कृतान्तपत्तनमनभ्यर्णं किमु प्राणिनां
यावज्जीवमपि प्रपीडितहृदस्तिष्ठन्तिलोभादिभिः।
तन्नस्तवच्चरणारविन्दशरणादन्यां मनः कामनां
मा निर्मातु कदाचिदेव करुणाकल्लोलिनीकामुक॥२१॥

विष्वक्सेन किमेनमेनसि कृताशंसं नृशंसं जनं
कृत्वा कालमुखे क्षिपस्युपदिशन्कर्माचुरूपां मयि।
बुद्धिं विष्टपकष्टभञ्जन जनुर्जीवातुरेको नृणां
कारुण्यामृतवारिधिस्त्वमुचितं किं तत्तवापीदृशम्॥२२॥

मेदाभावतया भवेदिह भवद्भक्तिर्न विष्णो मया
मायासंतमसाऽवसानकलितब्रह्मप्रकाश श्रिया।
भेदस्तु भ्रममातनोति परमं तत्त्वं किमित्याशया
तत्ते भक्तिसुधातरङ्गततये चेतः करोति स्पृहाम्॥२३॥

दत्त्वा चन्दनमात्रमत्रभवते भावान्विता भामिनी
भूत्वा भाग्यवती व्यतीत्य विबुधानुच्चैरगात्कुब्जिका।
मालाकारमनस्तुतोष न कया पुष्पप्रदानात् श्रिया
भक्तिः स्वल्पतरापि ते वितनुते कामं न कं श्रीपते॥२४॥

दत्तं पूतनया दयार्णव तव द्वेषं दधत्या विषं
निःशेषं तदपि व्युदस्य सदसद्याता परं तत्पदम्।
तस्मानौपयिकं मुकुन्द तव किं देयं यदङ्घ्रिस्थिता
त्रिस्रोतास्तरसा रसादपि कृतं कर्म क्षिणोति क्षणात्॥२५॥

केशी केशव लेशमप्युपकृतेः कस्यापि नैव व्यधा-
द्वेथा निष्ठुरकर्मकर्मठतमं चक्रे यमन्धं मदात्।
यत्त्वं तं विरजीचकर्थ हृदयग्रन्थिं मृदित्वात्मनो
हस्तेनान्तरगेन तस्य वपुषस्त्वान्तं दयार्द्रस्तुमः॥२६॥

दृष्ट्वा कालियनागदूषितपयः पानेन पन्नं यमी-
तीरे तर्णकपालबालककुलं कस्योपकारस्त्वया।
क्लृप्तो नेह दयार्द्रयाच्युत, धिया यद्वैनतेयादभू-
द्भोगी भग्नभयो धुनी गतगरा रम्याश्च दम्यादयः॥२७॥

पन्थानं प्रथमं पिधाय वपुषा पीतेन वक्रं पुन-
र्व्यादायाऽजगरः परः शतपशूनर्भैः समं जग्रसे।
त्वं तस्यापि तदत्तजीवनविधिव्याजेन विष्णो व्यधाः
सद्यः संसृतिपाशनासनमतस्त्वामीशमाशास्महे॥२८॥

देव श्रीवर पीवरः कवलयंस्तत्त्वार्थबुद्ध्यङ्कुरा-
न्हृत्कासारदयापयः कलुषयन्मोहो महाकासरः।
अन्तर्यामिणि साभ्यसूयहृदयं धत्ते भवत्यप्ययं
तत्किं तेन महाहवः सुमनसां सन्तुष्टये नेष्यते॥२९॥

विश्वाधार हरेऽहरेकमपि मे हृद्वृत्तिरप्युल्लस-
त्त्वद्ध्यानोद्धुरदुग्धसिन्धुलहरीलीलामरालीयताम्।

येनाह्लाय समस्तजन्म सफलं संजायतेऽह्ना यथा
वर्णेनादिभवेन देव सफला वैयञ्जनीयं जनिः॥३०॥

श्रीदामोदर सीदतामपि सतां त्वत्तः परं याचितुं
चेतो नेच्छति वेदगोरसलसद्धैयंगवीनात्मनः।
कः कल्पद्रुममूलनिर्मलमणीनिष्पन्नवेदीतलं
हित्वा काङ्क्षति तीरभूरुहभवच्छायामपायास्पदम्॥३१॥

देव श्रीवत्सलक्ष्मन्नव कवलयतः कालहस्ताद्विहस्ता-
नेतानेकोसि लोके निधिरधिकतरश्रीरनुक्रोशवाराम्।
या दैन्यं दुःखभाजां शमयति न दया किं तया साध्यमन्य-
त्तन्नः किं न प्रपन्नानपि विनयवृतो वीक्षसेऽपि क्षणार्द्धम्॥३२॥

लक्ष्मीजाने न जाने प्रतिजनिजनिताऽनल्पसंकल्पसूत्रै-
रारब्धे मोहजाले नवनिविडरुचिग्रन्थिगुप्ताऽत्मकत्वात्।
ध्यानं धर्मेषु धुर्यं धुतदुरितमथो पादयोरर्च्चनं ते
चारित्रं चातिचित्रं कलयितुमपि तद्रक्ष कारुण्यवत्त्वात्॥३३॥

मायामेया ममेयं तव नयनतिरोधानभूतास्ति विष्णो
न त्वां पश्यामि तस्मादपि हृदयसरोजन्मरोलम्बमेकम्।
संसारव्याधिवैद्यो यदसि तु तदियत्प्रार्थये स्वात्मदाना-
द्वीक्षे त्वत्पादमात्रं कुरु किमपि तथा सिद्धभैषज्यदानात्॥३४॥

देव श्रीरामभद्र द्रुतममृतवतः कुर्वतः कामभाजो
व्याजव्याहारतोऽपि व्यसनशतहतस्वीयमार्गानुरोधात्।
त्वन्नाम्नः शक्यते कैस्त्रिजगति महिमा वक्तुमप्युक्ततत्त्वै-
स्तन्नाम त्वत्प्रसादान्मम रसनकृतावासमभ्यासतः स्तात्॥ ३५॥

गुणग्रामं वक्तुं तव न वयमुद्दाममतयो
दयोदन्वन्नस्वास्वपि तदपि कोणं दिश दृशः।
यतो लब्धै बोधे तव चरितपीयूषजलधौ
मरालानां स्यामाऽच्युत कतरसंज्ञामृत इमे॥३६॥

श्रीरामस्य नमस्यमस्यदशुभान्यङ्घ्रिद्वयं तद्वयं
चेतं चेतमपेतपातकभरा भूरादिलोके कदा।
द्रक्ष्यामोऽखिलमेव जन्तुमतुलश्रीकं तुलस्युत्तर-
स्रग्भाजं गरुडध्वजं परिलसत्पीताम्बरं शार्ङ्गिणम्॥३७॥

देव श्रीनरसिंह संहर मदज्ञानं यदाघ्रातहृ-

न्नालस्यं तरसा त्यजामि शिरसा नन्तं त्वदङ्घ्रिद्वयम्।
लग्नं यन्नमनो मनोहरतरास्ताराधिपास्याः स्त्रियो-
ऽपास्य स्वर्गसदामुदारमयते मायाविहीनं महः।। ३८।।

यत्कारुण्यकटाक्षलेशवशतो लभ्यादिवः स्वामिता
यस्याज्ञामयहन्तुमन्तकशिरश्छेत्तापि नालं मृडः।
सम्पत्तिक्षमया सदैव रमया यद्दास्यमभ्यस्यते
भक्ते सीदति यः प्रसीदति विभुः सेव्यः स एवाच्युतः।।३९।।

इति श्रीविष्णभक्तिकल्पकताख्ये प्रबन्धे कविश्रीपुरुषोत्तमकृतौ
विष्णुविज्ञप्तिकोनाम षष्ठः स्तबकः।।

सप्तमः स्तबकः

केयं कौस्तुभकान्तिपूरलहरीलीलाविहारातुला
नन्दा नन्दति नन्दनन्दन घनश्यामे त्वदीयोरसि।
हृद्येवासि ममेति मां यदवदस्तत्केत्यसूयाकुलां
छाया सुभ्रु तवेयमित्यवतु वः श्लिष्यन्मुरारिः श्रियम्।।१।।

विश्वासो वनितासु मन्दमतिभिर्मैत्री मृषा भाषणं
भेदो भर्गमधुद्विषोः करुणया मुक्ताः क्रिया वा वरम्।
अत्तं हालहलं कलङ्ककलना कष्टं कलिर्बोत्तमै-
र्ये गोविन्दपदारविन्दविमुखाः सम्भाषणं तैर्न तु।।२।।

या बेला याति जन्तोर्जगति जलधरश्याम लोकाभिराम
श्रीराम ध्यानपूजाप्रणतिनुतिमहामङ्गलश्रीभिरिभ्या।
आयुः सा सर्व कामैरभिमतमतुलं स्वर्गसौख्यं च सैव-
ब्रह्म त्वं सा तदन्या मृतिनरकतति प्राप्तिगर्भार्त्ति हेतुः।।३।।

श्रीरामाय नमो नमो नम इति व्याहृत्य हत्यायुता-
न्मुच्यन्ते मनुजा न जातु जठरं मातुर्विशन्ति क्वचित्।
मंत्रोऽयं मधुराक्षरः स्फुरतु मे जिह्वाञ्चले निश्चलो
येनामी निगडा गलन्ति सहसा संसारसम्बन्धिनः।।४।।

सानन्दं सुन्दरीभिः सममरपुरो पान्तकान्तारवेल्ल-
न्मल्लीवल्लीमतल्लीप्रचुरपरिमलप्रीयमाणाऽलिवृन्दैः।
उद्गीतस्फीतशीतद्युतिसदृशयशा यच्चिरं भाति यज्ञैः
क्वैतत्क्वानन्तसेवाफलमहह कुतः कल्पवृक्षः क्व तालः।।५।।

जन्तो दीन भवाध्वनीन बहुना भारेण किं कर्मणां
खिन्नः किं न करोषि कर्णकुहरे किञ्चिद्वरेण्यं वचः।
विश्रामं कुरु रामचन्द्रचरणच्छायास्वनायासतो
यत्रत्या भविनो विनोदवशतो विन्दन्ति वाञ्छाधिकम्।।६।।

हर्षं चेत्कुरुषे सखे तदविता विष्णुर्ममेति ध्रुवं
कुर्वीथा यदि रोषमेष तदरिः संसार एकस्तव।
लोभश्चेतसि चेत्तदर्पय धनं सत्पात्रभूते द्विजे-
ऽहंकारस्तु तवायमेव घटते यत्सर्वमेवास्म्यहम्।।७।।

ये वर्णा व्यवहारमार्गविविधव्यापारवन्तः सदा
किं तैः संसृतिजालविस्तृतिकृते तन्तुत्वमभ्यागतैः।

जिह्वे जल्प निरन्तरं भगवते नारायणायो नमो
याताः पातकिनोऽपि यैः परपदं यत्तद्गुणागोचरम्॥८॥

यावत्संसारदावानलबहुलबलोत्तालकीलकराल-
प्राग्भारस्फारतापातदनुतरभवद्वेदनाभेदनाभिः।
कायः पञ्चत्वमायात्ययमहह न ते जीवदैवैकवश्य-
स्तावन्नारायणस्य श्रय सुरसरितासेवितं पादपद्मम्॥९॥

गोविन्दध्यानलीलालहरिपरिहृतानेकदुर्वारदोषाः
सन्तः स्वैरं चरन्तस्तृणमिव गणयन्त्येवमुच्चैर्भवाब्धिम्।
स्वामी वागःसमर्थोऽविमलतमधिमाऽराधितः साधकाना-
मम्भोधिं वा हनूमाननुनयवचनं जानकीवात्मशत्रोः॥१०॥

लब्धा पार्वणचन्द्रचारुचतुरं कन्दर्पकाण्डाकुलः
कामिन्या वदनं करिष्यसि घनं मन्ये चिरं कूर्द्दनम्।
ख्यातिं क्षोणितले गमिष्यसि पुनः प्राप्याखिलं काङ्क्षितं
कालो नस्मृतिमेति किं कवलयन्नुत्तालजिह्वो जगत्॥११॥

मुक्ताहारोऽपि पीनः स्तनकलशलसत्स्वाङ्गभावान्न मुक्तो
मध्येवह्निं प्रविश्य श्रवणपथगता कर्णिका विभ्रमाय।
शब्दायेते पदस्थे अपि पतनभयान्नूपुरे कामिनीनां
संसर्गस्तन्न दत्ते बत कतरदहो देहभाजामसौख्यम्॥१२॥

को बिन्दुं मृगतृष्णिकासु पयसः प्राप्नोति यत्नाज्जनः
कोवाभीषुभिरानमय्य शशिनं पीयूषमास्वादयेत्।
संसारे सुखमेति कः सिकतया निष्पन्नपात्रोपमे
जाड्यं जीव जहाहि याहि शरणं श्रीकान्तमेकान्ततः॥१३॥

कायः कष्टनिकाय एष नरकद्वारं पुरंध्रीजनो
बन्धुः स्वार्थपरो नृपस्य पदवी कारुण्यलेशोज्झिता।
वित्तं विष्णुदिवास्थिरं विविदिषा वेदे वितण्डावती
तत्संसारसमुद्रसारमितरत्किं कृष्णसेवामृतात्॥१४॥

तृष्णावारि न वारि नाऽन्नमशितं क्षुध्याधिविच्छित्तये
योग्यामातनुते निरन्तरमियं निद्रात्मदैर्घ्यैषिणी।
मारो मूर्च्छति निर्द्दयं नरमधोदेशं नयन्भैरवं
किं सारं वद जीवतव्यविषये विष्णोर्विहायाऽर्चनम्॥१५॥

कंसारातिसुरातिसेवितपदध्यानप्रमोदक्षणं

हित्वाराधकबाधकव्यधविधौ लोकत्रये दक्षिणम्।
कः सारामितरः करिष्यति विशामाशाभृशावर्त्तव-
त्संसाराब्धिसमर्थमारमकरग्रासीकृतानामिह॥१६॥

भूयाद्भूधर भक्तिरेव भवतः पादाम्बुजे भूयसी
यामाश्रित्य यमं न मन्दमतिरप्यालोकते कुत्रचित्।
दीव्यत्संसृतिदावपावकपयोवाहप्रवर्षत्ततिः
पीयूषादपि पेयपावनरसा लभ्या सदभ्यासतः॥१७॥

संसाराह्वयदावपावकलसल्लोभादिकीलावली-
दाहव्याहतदेहिदौःस्थ्यदलने यज्जायु वीर्योत्तरम्।
पीयूषादतिरिच्यतां मम मुखव्याकोशपद्माशये
तद्गङ्गादिगरिष्ठतीर्थगुरु ते गोविन्द पादोदकम्॥१८॥

संसृत्याह्वयवागुरैकविषये व्याधो हि कालाभिधो
मायाजालवशं विधाय बलवानह्वाय मामक्षिपत्।
तत्रत्यातुलजन्तुजातिकलनोद्दामापदं मां दया-
सिन्धो माधव मोचयामितभयाद्दीनं धृताशं त्वयि॥१९॥

मायाजालमिदं विचित्रमतुलं यस्मात्समुत्पद्यते
सूत्रं प्रत्युत संसृतिप्रसृतये यत्र स्थिता जन्तवः।
नित्यं निर्व्यथनैर्निवारितदृशो यन्मध्यगैर्दृश्यते
विश्वाकारतया तदेव परमं ब्रह्म प्रकाशात्मकम्॥२०॥

मा दामोदर दाः कदाचन चिदानन्दानुभावोत्सवा-
दन्यं मे समयं भयंकरभवव्याधिप्रधानौषधात्।
कस्ते पादसरोजसेवनसुधासुस्वादसन्तुष्टहृ-
त्सौख्ये संसृतिसम्भवे सुमतिमान्सञ्जायते सस्पृहः॥२१॥

सर्वाशासु समुन्नते जितवति प्रायेण तापत्रयं
श्रीरामे भवदावपावकघने निष्पङ्कजन्मस्थितौ।
अव्यक्ताक्षरमेव गर्ज्जति भवेद्यासारमुक्तिस्तया
मा सीदन्तु सबीजयोगमरुतः सत्क्षेत्रिणोऽयं नयः॥२२॥'

संसारदावानलस्य घने मेघे संसारतापशमके श्रीरामे अस्पष्टाक्षरं गूढं यथा तथा गर्जति या सारा श्रेष्ठा मुक्तिर्भवेत्, तया सन्तः क्षेत्रिणो देहिनो मा सीदन्तु। अयं नयो नीतिः। कीदृशे रामे। सर्वदिक्षु समुन्नते प्रसिद्धे। आध्यात्मकादितापत्रयं प्रायेण जितवति तापनाशके। निष्पङ्कं निष्पापं जन्म येषां तत्र स्थिर्यस्य तस्मिन्। अर्थान्तरध्वनिः-

सर्वदिक्षून्नते तापनाशके निश्चिता पङ्कस्य जन्म स्थितिश्च यत्र। गूढं गर्जति मेघे या आसारस्य वेगवृष्टेर्भुक्तिर्भवेत्, तया क्षेत्रवन्तो न सीदन्ति। कीदृशा देहिनः क्षेत्रिणश्च। सबीजयोगमरुतः। साकारध्यानयुक्तो योगः सबीजयोगः, तत्र मरुत् प्राणायामो येषां ते। बीजं व्रीह्यादि तद्योगेन मरुता अनुकूलवायुना च सह वर्तमानाः। 'पङ्कोऽघे कर्दमेऽपि च।' 'बीजं तु रेतसि। स्यादाधाने च तत्त्वे च हेतावङ्कुरकारणे।।' (इति हैमः)

'क्षेत्रं भारतादौ भगाङ्कयोः। केदारे सिद्धभूपत्न्योः' इति कोषः॥

चित्रं त्वेतदलब्धबीजविवशा योगेन हीनाः सदा
येषां साधयितुं समीहितमभून्नैवानुकूलोऽनिलः।
क्षेत्रं वीतवृषोदयं बहुतृणं सम्प्राप्य संकर्षणाः
साम्यं तैः समवाप्नुवन्ति फलतः श्रीरामनामग्रहात्॥२३॥

एवंविधा अपि नराः श्रीरामनामग्रहणमात्रेण सम्यक्कर्षणं शरीरशोषणं कृषिश्च येषां ते फलतः फलेन सादृश्यं यान्तीत्येतच्चित्रम्। कीदृशाः। अलब्धं यद्बीजं सबीजयोगध्यानं च तेन विह्वलाः। योगेन योगाङ्गेन यमादिना उपायेन, हलादि सामग्र्या च हीनाः। किंच, येषां समीहितमिष्टं साधयितुमनुकूलो वायुः प्राणायामो बाह्यवायुश्च नाभूत्। किं कृत्वा। वीतो नष्टो वृषोदयो धर्मोदयो वृष्ट्युदयश्च यस्मात्। बहुतृणं तृणादप्यूनं तुच्छम्। तृणात् '(विभाषा बहुच्) परस्तात्तु' इति बहुच्। बहूनि तृणानि यत्र ईदृशं क्षेत्रं स्थानं च प्राप्य॥

**रे संसारपयोद पुण्यतरणिं प्रच्छाद्य पङ्कोत्तरा
वृष्टिर्वैषयिकै रसैरविरतं सन्मार्गरोधाय ते।
किं च स्त्रैणकटाक्षलक्षणतडिज्झंकारतः केशवा-
सक्तान्भीषयसे श्रुतस्तव न किं तत्तार्क्ष्यपक्षोनिलः॥२४॥**

रे संसारमेघ, पुण्यतरणिं धर्मलक्षणं सूर्यं प्रच्छद्य वैषयिकैर्विषयसम्बन्धिभी रसैर्विषयास्वादैः पङ्कं पापमुत्तरमधिकं यस्याः सा। तव वृष्टिः सन्मार्गस्य रोधाय वाराणभ्य भवति। किंच स्त्रीसम्बन्धी कटाक्षरूपो विद्युतो झांकारस्तेन विष्णुभक्तान् यत्त्वं भीषयसे भयमुत्पादयसि, तत्किं तव तस्य हरेस्तार्क्ष्यो गरुडस्तत्पक्षवातो न श्रुतः। स त्वां निर्मूलं करिष्यतीत्यर्थः वातस्य मेघनिराकरणक्षमत्वं प्रसिद्धम्॥

**तृष्णाबल्लभ दम्भदोर्बल महामोहप्रतिष्टास्पद-
क्रोधालस्यवयस्य लोभविभव भ्रान्तिव्रतैकादर।
संकल्पात्मक मर्म तेऽस्ति विदितं संसार किञ्चित्परं
यन्नारायणनाममात्रचकितो भूयो न भावी भवान्॥२५॥**

तृष्णा बल्लभा यस्य। दम्भ एव बाहुबलं यस्य। महामोहस्थितावास्पदं यस्य।

कोपालस्ये मित्रे यस्य। लोभ एव विभवः समृद्धिर्यस्य। भ्रान्तिर्व्रतरूप एक आदरो यस्य। संकल्प एव आत्मा स्वरूपं यस्य। हे संसार, तव किंचित्परमुत्कृष्टं मर्म विदितमस्ति। यद्धरिनाममात्रभीतो भवान्न पुनर्भविष्यति॥

लालत्वं न जहाति हन्त कमला कौमारमुख्यं वयो
विद्युद्दश्नकल्पमल्पदिवसा नैव स्थितिः स्वैः सह।
यज्जागर्त्ति विदन्निदं न मनुजः संकल्पशय्यां गतः
संसाराह्वयवैरिणो विलसितं सर्वं तदेतद्ध्रुवम्॥२६॥

हन्तेति खेदे। लक्ष्मीश्चाञ्चल्यं न त्यजति। बाल्यादिवयस्तु विद्युद्दर्शनतुल्यम्। अतिचञ्चलमित्यर्थः। बन्धुभिः सहावस्थानं स्वल्पकालावस्थायि। मनुष्य इदं लक्ष्म्यादिचाञ्चल्यं जानन्नपि यन्न जागर्ति। मनोरथरूपशय्यां गतः सन् पारलौकिकं न करोति। निश्चितमेतत्सर्वं संसारलक्षणशत्रोर्विलसितम्। संसारप्रताप इत्यर्थः॥

रे संसारसमुद्र मुद्रय मुखं मा गर्ज्ज लोलैर्जलै-
र्गण्डूषग्रहिलो ग्रहीष्यति यतस्त्वां कुम्भकात्सम्भवः।
ब्रह्मण्यः स यमी घनाम्बुगरलप्रायः प्रवीणः प्रभु-
स्ताराकारधरः समस्तजगतामानन्दहेतूदयः॥२७॥

रे संसारार्णव, मुखं मुद्रय, चञ्चलैर्जलैर्मा गर्ज। ब्रह्मण्यो ब्रह्मप्रतिपादकः। यमी नियमयुक्तः। (घनाम्बु) मेघजलं निबिडपानीयं तदेव विषं तन्नाशचतुरः। तारस्य प्रणवस्य आकारधारी, बिन्दुरूपो वा। सर्वलोकानामानन्दकारणीभूत उदयो यस्ये तादृशः। कुम्भकात्प्राणायामभेदादुत्पन्नः। मुनिर्मननशीलः। ज्ञानरूपो हे ग्रहिल आग्रहवांस्त्वां ग्रहीष्यति यास्यति॥

प्रायो यत्परिचर्ययैति विलयं दोषोऽखिलः सञ्चितः
सर्वोपद्रवशान्तिरस्ति चरिते यस्य श्रुते विश्रुते।
यन्नामैव महौषधं त्रिभुवने पथ्यं पयः पादयोः
संसारामय रामचन्द्रचरणप्रह्वे भवेत्किं व्यथा॥२८॥

हे संसाररोग, हरिपादनम्रे नरे तव किं भवेत्। तमेव हरिं वर्णयति-यत्सेवया संचितः सर्वो दोषः प्रायो नाशमाप्नोति। विश्रुते यस्य चरिते रावणवधादिके श्रुते सति सर्वेषामुपद्रवाणां नाशोऽस्ति। भवति। त्रैलोक्ये यन्नामैव रामेत्यदिकं रोगौषधम्। यत्पादोदकं पथ्यं हितम्। ईदृशे रामभक्ते त्वमकिंचित्करः॥

सारं सर्वगिरां सदा दिशति यज्जन्तोरसव्यश्रुतौ
काश्यां कालजिघृक्षितस्य करूणाकल्लोल मालीमृडः।
पीतं पुण्यवशाद्दशाननरिपो रामेति (स्तद्राम) नामामृतं
येनासावमृती भयंकर भवाम्भोधेर्भयं तस्य किम्॥२९॥

रावणशत्रो रामेतिनामरूपममृतं येन पुण्यवशात्पीतम्, असौ अमृती मोक्षाधिकारी। तस्य भयंकरात्संसारसमुद्रात्किं भयम्। न किमपीत्यर्थः। तदेवाह– दयासमुद्रो हरः काश्यां कालेन ग्रहीतुमिष्टस्य मुमूषोर्जनस्य दक्षिणकर्णे सर्ववाणीनां सारभूतं सदा यद्रामनामोपदिशति॥

रोष त्वं दोषपोषोन्मुख विषमजुषो यन्निगृह्णासि तद्व-
न्मैव श्रीवत्सलक्ष्मोपचरणचतुराञ्जीगणो जातु जन्तून्।
क्षेमं रामं नमन्तः कति तु कृतिविदामुत्तमं मन्तुमन्तो
धाम व्याधामपाणिप्रमुखमखभुजां भेजुरुद्भासिताशाः॥३०॥

हे रोष, हे दोषस्य वृद्धावुन्मुख, विषयसेवापरांस्त्वं यद्वत्पीडयसि, तद्वद्धरेरुपचरणं सेवा तत्परान्नरान्माजीगणः मा गणय। गणयतेर्लुङि् मध्यमपुरुषैकवचनम्। 'नाग्लोपिशास्वृदिताम्' इतस्य गणयतेर्विकल्पितत्वाच्चङ्कार्यम्।मन्तुमन्तःसापराधा अपि जनाः कृतज्ञानां श्रेष्ठमिमं हरिं नमन्तः कतीन्द्रादिदेवलोकान्न प्राप्ताः। कीदृशाः। उद्भासिता दिशो यैः। व्याधाम वज्रं पाणौ यस्य व्याधामपाणिरिन्द्रः। 'व्याधामोऽपि' –इति वज्रनामसु क्षीरस्वामी॥

दानं नानन्दहेतुर्भवति महदहो दत्तमप्युत्तमेभ्यो
यागो वा गोहयादिर्गलितफलतया नर्म निर्माति नोच्चैः।
धर्मः शर्मैकभूमिर्न विलयमयते कोऽत्रयस्य प्रसङ्गा-
द्दम्भो दम्भोलिकल्पः स्पृशति कथमिवाधोक्षजध्यानधन्यान्॥३१॥

दानमिति। पात्रेभ्यो दत्तं महदपि तुलापुरुषादिकं दानं सुखकारणं न भवति। गोमेधादिमार्गोऽपि अधिकसुखं न करोति। कुतः। गलितफलतया क्षीणफलत्वेन। दानयागादिफलं भुक्तं क्षीयत इत्यर्थः। यस्य हरेः प्रसङ्गाद्धरिसेवातः शर्मणः सुखस्य एका असाधरणी भूमिः स्थानभूतो धर्मो न नाशं प्राप्नोति। तस्य हरेर्ध्याने एकनिष्ठान्ध्यापरानको दम्भाद्यधर्मसम्बन्धः कथमभिभवति। नाभिभवतीत्यर्थः॥

भवतिमिर किमेतन्मेदुरं ते दुरन्तं
प्रसरति परितोऽङ्गं पीडयत्साधुलोकान्।
हरितरणिरुदेति ग्रस्तमायातमिस्रो
रचयति न पुरा त्वां किं कथाशेषमेषः॥३२॥

हे संसाररूपान्धकार, मेदुरं बहुलं दुरन्तं दुष्टावसानं साधुजनान्पीडयते तवैतदङ्गं किं प्रसरति। न प्रसारणीयमित्यर्थः। यतो हरिरेव सूर्य उदयं याति। ग्रस्तं मायारूपं तमो येन। एष हरिमिहिरः। 'मिहिरारुणपूषणः' इति कोषः। त्वां कथैव शेषो यस्य

तादृशं किं न पुरा रचयति। न रचयिष्यतीत्यर्थः॥

भवभुजग जगन्ति व्याकुलीकृत्य दर्पा-
दयि दशसि दशास्यारातिसेवारतान्यत्।
विषयविषयुताशीः खण्डनेऽति प्रचण्डा-
त्किमु पतगपतेस्ते कोऽपि गोपायितास्ते॥३३॥

हे संसारसर्प, गर्वाज्जगन्ति व्याकुलानि कृत्वा यद्दशास्यो दशमुखस्तदराती रामस्तत्सेवापरायणांस्त्वं दशसि ग्रससे। तत्किं पतगानां पक्षिणां पत्युर्गरुडाद्गोपायिता रक्षिता कोऽपि तव वर्तते। कीदृशात्। विषया एव विषं तद्युक्ता आशीर्दंष्ट्रा तत्खण्डनेऽति समर्थात्॥

भवदव तव दग्धुं नौचिती विष्णुभक्ता-
श्चरितमतुलमेतत्किं न याति स्मृतिं ते।
यदयमपिबदग्निं गोकुलग्रासगृध्नुं
भवतिसहमहद्भिः श्रेयसे किं विरोधः॥३४॥

हे संसारदावाग्ने, हरिभक्तान्दग्धुं तवौचिती योग्यता नास्ति। एतदतुलं हरेश्चरितं किं तव स्मरणं नाप्नोति। यदयं हरिर्गोकुलदाहे साभिलाषं दवाग्निं अपिबत्। अशमयदिति भावः॥

भाति श्रीतुलसि प्रसिद्धमहिमा तेऽयं विधेयं विधे-
र्यत्स्वीयं न करोषि दासमसकृत्कर्त्तारमप्यंहसाम्।
यत्पत्रे पुरुषोत्तमप्रभृतयो देवा निवासोत्सवा-
स्तस्यायुक्तमिदं तदम्ब नय मां पारं भवाम्भोनिधेः॥३५॥

तुलसीं प्रार्थयते- हे श्रीतुलसि, अयं तव प्रसिद्धो महिमा भाति। कः। असकृत् अनेकवारं पापानां कर्तारमपि स्वीयं निजं दासं यद्विधेर्दैवस्य विधेयं वशं न करोषि। पापोऽपि त्वद्भक्तस्त्वयोद्ध्रियत इति प्रसिद्धार्चाकीर्तिरित्यर्थः। यस्यास्तव पत्रे हर्यादयो देवा निवासनिरताः तस्यास्तवेदमेव युक्तम्। तत्तस्माद् हे अम्ब, मामपि संसाराम्बुधेः पारं नय प्रापय॥

चक्षुर्मैव दिदृक्षं भूः परवधूवक्षोजपद्मप्रभां
कर्णाकर्णय कौतुकादपि बचो मावर्णवादात्मकम्।
जिह्वे जल्प यथा तथं विरमयाप्यक्षं परं पातका-
न्मच्चित्तेऽखिलदुष्टदर्पदलनो दामोदरो दीव्यति॥३६॥

हे चक्षुर्नेत्र, परस्त्रीस्तनपद्मकान्तिं द्रष्टुमिच्छुर्मैव भूः मा पश्य। हे कर्ण, अवर्णवादात्मकम्, अपवादवचनरूपं वा कौतुकादपि मा शृणु। हे जिह्वे, सत्यं वद।

परमप्यक्षमिन्द्रियं घ्राणकरादिकं पापान्निवर्तय। यतः सर्वेषां दुष्टानां दर्पनाशको हरिर्मम मनसि क्रीडति॥

आसीत्स्यमन्तकमणेर्हलहेतिचेतः
कृष्णेऽपि कोपकठिनं कुहनाविहीने।
सीतापि भर्त्तुरभवद्धनदुःखहेतुः
संसारसागररसा गरलोपमानाः॥३७॥

इति श्री''विष्णुभक्तिकल्पलता प्रवन्धे कवि श्रीपुरुषोत्तमकृतौ ''संसारतिरस्करणो'' नाम सप्तमः स्तबकः॥

हलं हेतिरायुधं यस्य तस्य बलभद्रस्य चित्तं निष्कपटेऽपि कृष्णे स्यमन्तकमणेर्हेतोः कोपेन कठिनमभूत्। कथंभूते कृष्णे। कुहनाविहीने छलरहिते।''शतधन्वा मणिं गृहीत्वा पलायित इति श्रुत्वा तं हन्तुं गतौ बलकृष्णौ ततो हयं पतितं विलोक्य बलमवस्थाप्य गतेन हरिणा तं हत्वा 'मणिर्नास्ति तत्र' इत्युक्तेः मणिः कृष्णेन निह्नुत इति मत्वा बलः क्रुद्धोऽभूत'' इति कथा। सीतापि रामस्य निबिडदुःखदायिन्यभूत्। अतएव संसाराब्धिरसाः केचन कामिनीरूपा विषतुल्याः। यैर्हरयेऽपि दुःखमदायीति भावः॥

इति श्रीमहीधरविरचिते विष्णुभक्तिकल्पलताविवरणे
''संसारतिरस्कारो''नाम सप्तमः स्तबकः॥

अष्टमः स्तबकः

गोप्यः कोऽप्ययमद्भुतः सुतपसो नन्दस्य सूनुः स्वयं
शंभुर्वा कमलासनः सुरशिरोरत्नं रमेशोऽपि वा।
संलापामृतपूर्णकर्णकुहरामेवं ब्रजस्त्रीजनै-
र्गाढानन्दमयीं पयोऽर्थमवतु श्लिष्यन्यशोदां हरिः॥१॥

संप्रति ध्यानं वक्तुं मङ्गलमाचरति-हे गोप्यः, शोभनतपोयुक्तस्य नन्दस्यायं पुत्रः कोऽप्यद्भुतः शिवो ब्रह्मा देवशिरोमणिर्हरिर्वा, एवं गोपीजनैः संलापामृतेन पूरितं कर्णविवरं यस्यास्ताम्। अत एव निबिडहर्षव्याप्तां यशोदां स्तनपानार्थमालिङ्गन्हरिर्वः पातु॥

पात्रं हृत्कमलं मुरारिचरणद्वन्द्वैकसेवामृतं
स्नेहोऽनन्तनितान्तनिर्मलगुणैरुद्दामशोभा दशा।
अन्तर्यामितया प्रतीतममलं ज्योतिः किमप्यद्भुतं
मायाकज्जलरेख एष भवताद्दीपो भवध्वान्तभित्॥२॥

एष परमात्मरूपो दीपो वो युष्माकं संसारान्धकारभिद्भवतु। दीपसामग्रीमाह-हृत्पद्मं पात्रम्। हरिचरणयुगलभक्तिलक्षणममृतं स्नेहस्थानीयम्। हरेरत्यन्तनिर्मला ये गुणा ऐश्वर्यादयस्तैरुत्कृष्टशोभायुक्ता दशा वर्तिः। अन्तर्यामिस्वरूपेण प्रसिद्धं निर्मलाश्चर्यकारि ज्योतिर्दीपप्रभास्थानीयम्। किंभूतो दीपः मायैव अञ्जनरेखा यस्य॥

आयुर्नीरमिदं निमेषमिषतः कालेन पेपीयते
पश्य प्राश्य जगन्ति विश्वविरमेऽविच्छिन्नतृष्णावता।
प्राणास्तद्भयविह्वलः प्रियतमा देहस्य चायं पुन-
र्यातायातपरस्तदत्र कतरत्कृष्णादुपायान्तरम्॥३॥

जगन्ति प्राश्य विश्वं संहृत्य विश्वनाशेऽपि अविच्छिन्नतृष्णायुक्तेन कालेन निमेषमिषादायुर्लक्षणं जलं पेपीयते। पातेर्यङ्। तस्मात्कालाद्भयेन व्याकुलः प्राणोऽयं देहस्य वल्लभतया यातायातपरो गमनागमनपरोऽस्ति। तत्तस्मादत्र संसारे कृष्णादन्यदुपायान्तरं सुखसाधनं कतरत् किमस्ति। हरिं विनान्य उपायो नास्तीत्यर्थः॥

यत्ते चित्ते विधन्ते हरिपरिचरणोपायमस्तव्यपायं
शास्त्रं साक्षात्समत्वप्रमदसमुदयप्राप्तये तद्धि विद्धि।
लीलाकैलासशैलाश्रयविबुधवरप्राज्ञतायास्तु शेषं
संसारस्थित्यपेक्षापलपितपरमानन्दमर्थान्तराद्यम्॥४॥

'समः शत्रो च मित्रे च तथा मानापमानयोः' इत्यादिना गीतोक्तं यत्समत्वं तेन

यः प्रमदसमुदय आनन्दोदयस्तत्प्राप्तये. शास्त्रं गीतोपनिषदादिवेदान्तशास्त्रं यत्ते यत्नवति। यती प्रयत्ने। चित्ते हरिसेवालक्षणमुपायम्, अस्तो व्यपायो विघ्नो यत्न निर्विघ्नं यथा तथा विधत्ते करोति, इति विद्धि जानीहि। आदौ मनोजयः, ततो हरिसेवा, ततः समत्वाप्तिः, ततो ब्रह्मानन्द इतिक्रमः। ततो लीलया कैलासः शैल आश्रयो यस्येदृशो यो विबुधवरो देवश्रेष्ठः शंकरस्तस्य, प्रज्ञास्यास्तीति प्राज्ञः, प्रज्ञ एव प्राज्ञ इति वा तस्य भावः प्राज्ञता ज्ञानं तस्याः शेषं तदन्यप्रतिपादकमर्थान्तरयुक्तं यच्छास्त्रं तत्। संसारस्थित्यपेक्षया अपलपित आच्छादितः परमानन्दो येनेदृशं बोध्यम्। हर्यन्यप्रतिपादकं शास्त्रं संसारप्रापकमित्यर्थः॥

येनानेना विना स्यान्न विहितदुरितस्तीर्णचान्द्रायणादिः
प्रायश्चित्तोऽप्यथान्यो विविधवृषवशाद्वासवावासवासम्।
संप्राप्य स्निग्धमुग्धाधरमधुररसास्वादसौहित्यहीनो
दीनो विभ्रंशमेति श्रयत तदनिशं दास्यमेवाच्युतस्य॥५॥

द्विविधो जनः, पापी पुण्यवांश्च। तयोरपि हरिरेव शरणमित्याह- विहितं दुरितं गोवधादि पापं येन सः। कृतचान्द्रायणादिप्रायश्चित्तोऽपि येन हरिं विना अनेना निष्पापो न स्यात्। अन्यथा अन्यः पुण्यवान् विधिधर्म वशाद्वासवावासे स्वर्गे संस्थितिं प्राप्य स्निग्धः प्रीतिविषयो मुग्धः सुन्दरो योऽधरस्तस्य यो मधुररसस्तस्यास्वादेन यत्सौहित्यं तृप्तिस्तद्रहितोऽप्सरोभोगेन तृप्त एव दीनः सन् पुण्यक्षये भ्रंशं पातं प्राप्नोति। तत्तस्मान्निरन्तरं हरेर्दास्यमेवाश्रयत। हरिसेवां विनात्यन्तिकसुखाभावात्॥

स्फूर्जद्धूर्जटिमौलिशालिनलिनीकल्लोलवल्लोलता-
लीलाकौतुकमन्वभावि भवता साकं निजैरिन्द्रियैः।
भूत्वा केवलमेव धाम्नि तदहो शुद्धे सुषुम्णान्तरे
मध्येहृत्कमलं सुखाय सुचिरं रे चित्त विश्रम्यताम्॥६॥

रे चित्त, स्फूर्जति शोभमाने धूर्जटिमौलौ शिरसिशालिनी नलिनी गङ्गा तस्याः कल्लोलवद्गङ्गोर्मितुल्यं लोलतालीलाकौतुकं चाञ्चल्यक्रीडोत्सवो निजैरिन्द्रियैः सह भवता त्वया अन्वभावि अनुभूतम्। इन्द्रियाणि त्वं चातिचञ्चलमिति त्वयैवानुभूतम्। तत्तस्मात्केवलमिन्द्रियरहितो भूत्वा सुषुम्णानाडीमध्यवर्तमाने हृत्पद्ममध्ये शुद्धे धाम्नि ब्रह्मस्वरूपे चिरकालं सुखाय सुखं प्राप्तुं विश्रमः क्रियताम्॥

धुन्या धर्मधुरीणयाध्वरभुजां बन्धूरया धारया
द्वारं तां दशमीं प्रविश्य वियतः प्रक्षाल्यमानं महत्।

सर्वस्वं यदशेषतः श्रुतिगिरां ध्येयं यदेकं सतां
तद्ध्यात्वा सुमनस्तमार्चय चिरं चेतोऽच्युताख्यं महः॥७॥

हे चेतः, तदच्युतरूपं महस्तेजः सुमनस्तया शोभनमनस्कत्वेन ध्यात्वा पूजय। चिरं सर्वदा। किं कृत्वा। दशमीं द्वारं ब्रह्मरन्ध्राख्यां सुषुम्णालक्षणां वा प्रविश्य। कीदृशं महः। धर्मधुरं वहतीति धर्मधुरीणा, तया धर्मोत्पादिकया अध्वरभुजा देवानां धुन्या गङ्गा हरिचरणवर्तमानया वियतो ब्रह्मरन्ध्रसकाशाद् बन्धुरया मनोज्ञया धारया प्रवाहेण प्रक्षाल्यमानं महल्लोकोत्तरं यच्छ्रुतिगिरामुपनिषद्वाचामशेषतः सर्वांशेन सर्वस्वम्। यच्च सतां सनकादीनामेकं ध्येयम्॥

भूत्वा केवलमेव मानस लसन्मोहाद्यसत्सङ्गतो
मध्येहृत्कमलं प्रविश्य विमलं बैकुण्ठमाराधय।
यस्यालोकनमात्रतोऽत्र तरसा निःशेषकर्मक्षयः
क्षीणे कर्मणि कोऽप्यगोचरतरो वाचामलभ्यः पुनः॥८॥

हे मानस, लसन्तः प्रसरन्तो ये मोहादयोऽसन्तो दुष्टास्तेषां सङ्गात्केवलमेकं भूत्वा हृत्पद्मे प्रविश्य निर्मलं हरिं पश्य। यस्य दर्शनमात्रेण सहसा सर्वकर्मनाशः स्यात्। नष्टे च कर्मणि वाचामविषयः कोऽप्यलभ्योऽप्राप्यः। अपि तु प्राप्यैव कर्मणां क्षय एव ब्रह्मानन्दोदयो भवति। तानि कर्माणि हरिध्यानेनैव क्षीयन्त इति भावः॥

सामर्थ्यं सुमनः सु नास्ति नियतं बन्धं निरोद्धुं निजं
तत्र स्वान्तमधुव्रत स्थितिरियं बन्धाय गन्धाशया।
मुक्तिश्रीमुखपद्मसौरभमपि प्राप्यं यदीयाश्रया-
देकं तद्भवपाशनाशकुशलं कृष्णाङ्घ्रिपद्मं भज॥९॥

नियतं निश्चितं सुमनः सु देवेषु कुसुमेषु च निजं बन्धं कर्मबन्धनं निरोद्धुं वारयितुं सामर्थ्यं नास्ति। हे स्वान्तमधुव्रत चित्तभ्रमर, तत्र देवेषु गन्धाशया वासनया इयं स्थितिर्बन्धायैव। संसारबन्धोच्छेदेच्छया अन्यदेव भजनमकिंचित्करमित्यर्थः। तत्तस्मात्संसारपाशनाशे समर्थमेकंहरिपादपद्मंसेवस्व। यत्पादाश्रयान्मुक्तिलक्ष्मीमुखपद्मस्यापि सौरभं प्राप्यमेव॥

चेतः प्रेतपतिस्थितिश्रुतिरिति त्रासाय संसारिणां
तद्दृष्टिः परमापदामनुभवो नानाविधा वेदना।
श्रीमद्रामकथा जनश्रुतिपथा नाहन्ति सर्वव्यथा
नासन्पूर्णमनोरथाः कति जनास्तत्रादरं तत्कुरु॥१०॥

हेचेतः, प्रेतपतेर्यमस्य स्थितिश्रवणं पुराणादौप्राणिनामतिभयाय। यमस्थितिदर्शनं तु आपदां कष्टानां स्थानम्। अनुभवो नरकभोगस्तु नानाविधवेदनारूपः। जनानां

श्रुतयः कर्णाः पन्थानो मार्गा यस्या ईदृशी, जनैः कर्णश्रुता सती रामकथा ता नरकोत्थाः सर्वव्यथा हन्ति निवारयति। तथा रामकथया कति पूर्णमनोरथा नाभूवन्। अनेके पूर्णकामा जाता इत्यर्थः। तत्तस्मात्तत्र रामकथायामादरं कुरु। तामेव नित्यं शृण्वित्यर्थः॥

मा गा रागावशाद्विहाय विमलं विष्णोः पदाब्जं क्वचि-
च्चेतः सेवितमेतदेव मुनिभिर्मत्वा महिष्ठं महः।
मद्वाचं मनुषे न चेदिह ततो हन्तास्मि तेऽहं यतो
नो भूतानि न खानि नापि विषया नामी गुणा नो महान्॥ ११॥

हे चेतः, निर्मलं विष्णोश्चरणकमलं। त्यक्त्वा स्नेहवशात्क्वचिन्मा गच्छ। मुनिभिर्नारदादिभिरेतदेव महिष्ठं श्रेष्ठं महस्तेजो ज्ञात्वा सेवितम्। मद्वाणीं चेन्न मन्यसे नाङ्गीकुरुषे ततस्तर्हि ते त्वां हन्तास्मि। कर्मणि षष्ठी। चित्तं नाशयिष्यामि। उन्मना भविष्यामीत्यर्थः। यत उन्मन्यवस्थायां भूतानि भूम्यादीनि नो, खानि इन्द्रियाणि न, विषया रूपादयोऽपि न, अमी गुणाः सत्त्वादयोऽपि नो, महान्महत्तत्वमपि न। ब्रह्मीभूतो भविष्यामीत्यर्थः॥

यत्तापत्रयसंभवन्नवनवज्वालावलीव्याकुलं
जाड्यं नैव जहासि हासि कठिनं चेतस्त्वमुच्चैस्ततः।
गङ्गाख्यं गरुडध्वजाङ्घ्रियुगले जागर्ति जायुः स्फुटं
तद्ध्यानद्रवभावमेत्य तरसानेनैकतां तद्व्रज॥१२॥

हे चेतः, यद्यस्मात्तापत्रयादाध्यात्मिकादेः संभवन्ती जायमाना या नवनवा ज्वालावलिस्तया व्याकुलं सज्जाड्यं मौर्ख्यं न जहासि न त्यजसि। ततो हेतोरुच्चैरत्यन्तं हा खेदे कठिनमसि। तस्माद्धरिपदयुग्मे गङ्गालक्षणं जायुरसविशेषोऽस्ति, तस्य ध्यानेन स्फुटं द्रवत्वं प्राप्य तरसा बेगेन तेन गङ्गाजायुना एकत्वं प्राप्नुहि। हरिपदसक्तं भवेत्यर्थः॥

चेतः के तव हेतवः स्तवमवज्ञाय श्रियः प्रेयसः
प्रायः पातकजातघातकुतुकं यद्वर्तसे स्वेच्छया।
आश्चेत्ते स्मृतिमेति मातुरुदरे वासव्यथा तत्कथं
कण्ठाश्लिष्टवरिष्ठरिष्टनिकराद्बोधो न कष्टापदि॥१३॥

पापसमूहस्य घाते नाशे कुतुकमुत्सवो यस्येदृशं श्रियः प्रेयसो रमाकान्तस्य स्तवं स्तुतिमवज्ञाय हे चित्त, त्वं प्रायो बाहुल्येन स्वेच्छया प्रवर्तसे तत्र के तव हेतवः किं प्रयोजनम्। आः इति विस्मये। ते तव मातुरुदरे वासेन या व्यथा सा चेत्स्मृतिमेति, तद्दुःखं स्मर्यते चेत्तर्हि कष्टयुक्तायामापदि कण्ठे आश्लिष्टो लग्नो वरिष्ठः श्रेष्ठो

यो रिष्टनिकरोऽशुभसमूहस्तस्मादपि कथं बोधो न जायते। संसारदुःखक्लान्तस्यापि कथं न बोध इत्याश्चर्यम्॥

अक्षाणामनिशं करोषि यदरे चेतस्त्वमन्वासनं
तद्योग्ये विषये सलालसमसि स्वामित्वमात्रभ्रमात्।
हित्वासन्नमहो महामृतमयं वेदान्तवेद्यं परं
किं लज्जापि न जायते शिवशिव व्यध्वेन ते गच्छतः॥१४॥

हे चेतः, यन्निरन्तरमक्षाणामिन्द्रियाणामन्वासनमनुवर्तनं त्वं करोषि इन्द्रियान्यनुवर्तसे। तद्योग्ये इन्द्रिययोग्ये विषये रूपादौ सलालसं सतृष्णं वासि। स्वामित्वमात्रभ्रमेण अहमिन्द्रियेशमिति भ्रमात्। 'स्वामित्वमात्रे भ्रमद्' इति पाठे विशेषणम्। किंच आसन्नं निकटवर्ति वेदान्तप्रतिपाद्यममृतरूपं महो ब्रह्मस्वरूपं हित्वा व्यध्वेन, विगतोऽध्वा व्यध्वः। तेन उन्मार्गेण गच्छतस्तव किं परं केवलं लज्जापि न जायते। शिव शिवेति दुःखावेदकः शब्दः 'हरिहरि हतादरतया' इतिवत्॥

अत्यन्तानुचितेऽपि कर्मणि मनः प्राप्य प्रवृत्तिं पुनः
खेदं यासि किमुच्चकैः कुरु मतिं कृष्णे कृपाकोमले।
लोके तद्दुरितं किमस्ति मधुजिन्नत्या न यत्क्षीयते
को वा दावविभावसोरपि रसोऽशोप्यस्तृणानां वने॥१५॥

हे मनः, अत्यन्तमयोग्येऽपि कर्मणि प्रवृत्तिं प्राप्य पुनः खेदं किं यासि। कृपायुक्ते कृष्णे मतिं कुरु। लोके तत्पापं किमस्ति यद्धरिनमस्कारेण न नश्यति। दृष्टान्तमाह- वने वर्तमानानां तृणानां को वा रसो दावाग्नेरशोप्यः। अपि तु सर्वः शोष्य एव। तथा हरिनत्या पापमिति॥

निर्माय स्वयमेष शेषशयनः स्वामी समग्रं जग-
त्तद्व्यापारभरं चकार गुणिनि त्वय्येव चेतः परम्।
त्वं तद्दर्शनमप्यनिच्छु मनुषे कर्तृत्वमप्यात्मनि
स्पष्टादीनव जीवितं क्षममतस्तद्दर्शनान्तं तव॥१६॥

हे चेतः, शेषशायी स्वामी हरिरेष सर्वं जगत्स्वयं कृत्वा जगत्संबन्धि व्यापारसमूहं परं केवलं गुणयुक्ते सत्त्वादियुक्ते त्वयि कृतवान्। त्वं तु हरिदर्शनमनिच्छु सद् आत्मनि कर्तृत्वं मन्यसे। स्पष्ट आदीनवो दोषो यस्य तत्स्पष्टदोष, कृतघ्न, अतो हेतोः हर्यभक्तिकारणात्तव जीवितं हरिदर्शनान्तं क्षमम्। दर्शनमन्तो नाशो यस्य तत्। हरिदर्शनान्निर्मनस्को भविष्यामीत्यर्थः॥

भातिः श्रीपरमेश्वरः स्वयमयं हृत्पुण्डरीके यवा-
कारः कारणमेकमेव जगतामाधारभूतः प्रभुः।

सत्यस्मिन्नपि बम्भ्रमीषि किमरे चेतो दुराशावशा-
देकं तिष्ठ मुहूर्त्तमत्र नियतं यातुं निरातङ्कताम्॥१७॥

अयं श्रीपरमेश्वरः स्वयं साक्षाद् हृत्पद्मे भाति। कीदृशः। यवसदृशः। जगतामेकमेव कारणम्, आधारश्च। प्रभुः कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः। अरे हीनसंबोधने। हे चेतः, अस्मिन्हृत्पद्मे वर्तमानेऽपि दुस्तृष्णावशात्किं त्वं, भ्रमसि। भ्रमतेर्यङ्लुगन्तं रूपम्। निश्चितं निरातङ्कतां निर्भयतां प्राप्तुमेकं मुहूर्तमत्र हृत्स्थे हरौ तिष्ठ॥

हरिध्यानं हित्वा चरसि रसिको मोहमदिरां
निपीय प्रेयस्या सह कुहनया संशयसखः।
कृतान्तव्यापारं कलयसि न कस्मादकुशलं
कियत्कालं केलिं विषयवनमध्येऽनुभवसि॥१८॥

हे जन्तो, त्वं मोहरूपां मदिरां पीत्वा संशयस्य सखा सर्वदा संदिहानः सन् हरिध्यानं हित्वा त्यक्त्वा कपटयुक्तया नार्या सह रसिक आसक्तः क्रीडामनुभवसि। परन्तु अकुशलं नरकादिदुःखप्रदं यमव्यापारं कस्मान्न कलयसि न जानासि। शिखरिणीछन्दः॥

पत्रालंकृतपुष्पशालितुलसीवृक्षोल्लसद्वल्लरी-
वृन्दैरिन्दिश्या समं स भगवान्नारायणो नार्चितः।
पाणौ दीनजनावनव्यसनिता नासादिता सीदते
किञ्चिन्नोपकृतं कृतं किमहह प्रक्षीयते जीवितम्॥१९॥

देवः श्रीललनानुरागकलनालीलोर्भिलोलीभव-
त्स्वान्तः स्वां तनुते दृशं तवयि न चेत्सेव्यस्तदाप्यादरात्।
यस्मात्तच्चरितामृताब्धिलहरीलाभानुभावा जनाः
स्तूयन्ते यतिभिः पवित्रमतिभिः संसारपारंगतैः॥२०॥

जायायौवनजीवनादिजनितं जोषं जगत्यस्ति य-
त्तद्रोगाय भवत्यवश्यमखिलं मातङ्गजातेरपि।
सेवासाधुसुधासु धेहि धिषणां हित्वेतराध्येषणां
गोविन्दस्य यदिच्छवः सवभुजो नाद्यापि निद्रालवः॥२१॥

एकस्मिन्नेव जन्मन्यहह तनुभृतां नैवजन्मप्रकाशः
संलक्ष्ये भूतवर्गे त्विह सह सकले सर्वसाधारणेऽक्षैः।
विष्णुध्यानैकताने मनसि मुनिरनुक्रोशदानाद्युपेते
देवो मोहाभिभूते नर इतरजनिर्ज्जातपङ्के स एव॥२२॥

किं पुष्पं तुलसीसमं त्रिभुवने दानं किमम्भोनिभं
गीतायास्तुलनामुपैति कतरच्छास्त्रं पवित्रं परम्।

को देवो भजतां नितान्तहित कृन्नारायणादप्यहो
का भक्तिः स्मरणाधिका किमितरच्चेतः समं साधनम्॥२३॥

तन्मध्ये रविमण्डलं मधुजितं देवं लसत्कुण्डलं
नेत्रश्रीजितमञ्जुनीरजदलोदारप्रभासौभगम्।
भास्वद्भालतमालपत्ररचनारोचिष्णुवक्राम्बुजं
भ्रूलेखाजितपुष्पधन्वधनुषः सौन्दर्यगर्वाङ्कुरम्॥२४॥

मूर्धारोपितमञ्जुमौलिवलभीसन्दर्भितात्यद्भुत-
ज्योतिर्द्दिव्यमणीमरीचिरमणीरङ्गीभवद्योतलम्।
ग्लानिं चन्द्रमसः कपोलफलकश्रीभिः सृजन्तं सदा
यं ब्रह्मेति वदन्ति वेदविवृत्तौ विख्यातशिक्षाभृतः॥२५॥

अत्यन्तोत्तमनासिकाविवरयोः श्वासप्रसङ्गोत्सवैः
कुर्वाणं कमलामुरः स्थिरतरां निष्पारिजातादराम्।
आरक्ताधरधर्मिणा धुरि मधोः प्रादुर्भवत्पल्लवं
माकन्दं मदमार्गसार्गलहृदं कुर्वन्तमन्तर्भजे॥२६॥

दीव्यद्दन्तमयूखसंचयपयः पूरेण दुग्धोदधे-
रुत्कण्ठां शमयन्तमात्महृदयस्थायिश्रियो हास्यतः।
नित्यं प्रत्युरसप्रसक्तसुमणिस्फूर्जद्घृणिश्रेणिभिः
प्रत्याख्यातषडूर्मिनिर्मलमनोजाग्रत्त्रिलोकीहितम्॥२७॥

एवं विधं हरिं चित्त एव कुर्वे इति तृतीयेनान्वयः। कीदृशं तदाह- हास्यतः दीव्यन्तः प्रसरन्तो ये दन्तकिरणसमूहास्त एव दुग्धपूरस्तेन स्ववक्षः स्थिताया लक्ष्म्याः क्षीरसागरस्योत्कण्ठां शमयन्तम्। हास्यप्रसरद्दन्तरश्मिभिः श्रिया: क्षीराब्धिभ्रमौ भवतीत्यर्थः। उरसीति प्रत्युरसम्। सप्तम्यर्थेऽव्ययीभावः। 'प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्' इत्यच्प्रत्ययः। नित्यं वक्षसि संसक्तो यः शोभनो मणिः कौस्तुभस्तस्य स्फूर्जन्तो ये रश्मिसमूहास्तैः प्रत्याख्यातास्तिरस्कृताः षडूर्मयः क्षुधादयो यस्मात्। अत एव निर्मलं यन्मनस्तत्र जाग्रत् सदास्थितं त्रैलोक्यादिहितं यस्य तम्। 'प्राणस्य क्षुत्पिपासे द्वे शोकमोहैः तु चेतसः जरामृत्यू शरीरस्य षडूर्मिरहितः शिवः॥' इति वचनात्॥

निःशङ्कं जगदर्तिवर्तितमनोवृत्तिप्रतीतासुर-
स्कन्धस्थायिमदव्यपायचपलं चक्रं च कौमोदकीम्।
हस्तानां तु चतुष्टये सधनुषं शङ्खं तुषारद्युते-
र्बिम्बेनातिसदृक्षमक्षयजयोदग्रे दधानं प्रभुम्॥२८॥

अक्षयोऽविनाशी यो जयस्तेनोत्कृष्टे हस्तचतुष्टये चक्रं गदां सरसिजं पद्मं

शङ्खं च दधानं विभ्राणम्। कीदृशं चक्रम्। निःशङ्कं जगत्पीडायां वर्तितया मनोवृत्त्या प्रतीता हृष्टा येऽसुरास्तेषां स्कन्धस्थो यो गर्वस्तन्नाशे चञ्चलम्। दैत्यान्नाशयन्तमित्यर्थः। कीदृशं शङ्खम्। तुषारद्युतेश्चन्द्रस्य बिम्बेनातिसदृशम्। प्रभुम्। समर्थमित्यर्थः॥

कण्ठस्थापितदामदुर्लभतमामोदेन मत्तालिनां
व्याषेधव्रतपाणिपद्मरमया विभ्राजितोरःस्थलम्।
नाभीनीरजसद्मपद्मजनुषां सिद्धान्तसंभावित-
स्तोत्रार्थामृतपूर्णकर्णकुहरं हृद्येव कुर्वे हरिम्॥२९॥

कण्ठे स्थापितमालया अत्यन्तं दुर्लभो यः परिमलस्तेन मत्तानां भ्रमराणां व्याषेधे निवारणे व्रतं यस्येदृशं पापिपद्मं यस्याः, तया रमया शोभितमुरःस्थलं यस्य तम्। नाभीपद्मं सद्म गृहं यस्येदृशेन पद्मजनुषा विधिना सिद्धान्ततया संभावितानि यानि स्तोत्राणि तदर्था एवामृतानि तैः पूरितं कर्णविवरं यस्य तम्॥

कर्पूरामृतदीधितिप्रतिमया कायश्रिया शोभितं
धौतं सत्कलधौतजातसदृशच्छायं च यस्योत्तरम्।
सेवाकारिसुपर्वराशिमुकुटप्राप्तप्रतिष्ठैर्मणि-
श्रेष्ठैर्जुष्टपदारविन्दयुगलं ध्यायामि दामोदरम्॥३०॥

कर्पूरचन्द्रतुल्यया देहश्रिया शोभितं विष्णुम्। 'शारदकोटिचन्द्रसदृशम्' इति शारदोक्तेः। धौतं शुद्धम्। सत् शुद्धं यत्कलधौतं हेम तत्समूहतुल्या कान्तिर्यस्य वासः। सेवाकारिणो ये सुपर्वराशयो देवसमूहाः। 'सुपर्वाणः सुमनसः' इत्यमरः॥ 'शाली' इति पाठे देवेषु शालयन्ते शोभन्ते ये मुकुटास्तत्र प्राप्ता प्रतिष्ठा स्थितियैर्मुकुटखचितै रत्नश्रेष्ठैः सेवितं पादाब्जयुग्मं यस्य तम्॥

भवाटव्यामव्याहतगतिरयं मारमृगयुः
पुमेणानेणाक्षीनयनमयपाशैरशिथिलैः।
दृढं बद्धवाश्वत्थच्छदसदृशकारां नयति तां
यतो मूढं विश्वं तदव निकृतेः कृष्ण कृपया॥३१॥

संसारवनस्खलितगतिरयं कामव्याधः पुंस एवैणा मृगास्तान्मृगाक्षीनेत्ररूपपाशैर्दृढैर्दृढं बद्ध्वा पिप्पलपत्रसदृशीं कारां बन्धनागारं नयति। नानायोनीः प्रापयतीत्यर्थः। यतो जनैर्विश्वं मूढं भवति तत्तस्मात् हे कृष्ण कृपया निकृतेः संसारपराभूतेः सकाशादव रक्ष। 'तदवनकृते' इति पाठे तस्माद्रक्षणाय कृपां कुरु॥

मच्चेतो मधुसूदनाङ्घ्रिकमले मन्दाकिनीकेलिमत्
क्लिन्नं भक्तिरसेन तीर्णमभितः संसारवारांनिधिम्।

मोहं मित्रमनेकजन्मसु मुदात्रैवाममज्जत्क्वचि-
त्तद्वैरेण न विश्वसन्ति कथमप्यस्मिन्विषादादयः॥३२॥

मम मनो हरिपदपद्मे गङ्गायां क्रीडायुक्तं भक्रिसेनार्द्रं सरसमभितः संसाराब्धि तीर्णं सदनेकेषु जन्मसु सहायं मोहमत्रैव संसारे मज्जयामास। तद्वैरेण विषादमदलोभादयाऽप्यस्मिंश्चित्ते कथमपि न विश्वासं कुर्वन्ति मज्जनभयेन॥

आम्नायाभ्यसनैः कृतं फलमिदं त्रेताकृताराधना-
सन्तुष्टा मम यन्मतीर्भगवती श्रीरामचन्द्रेऽभवत्।
यस्याराधनमन्तरेण तनुभृत्तापाय न द्वापरो
न स्यात्तत्किमिवोच्यते कलिकृतामत्रापदां चेष्टितम्॥३३॥

वेदाभ्यासैरिदं फलं कृतम्। 'अग्नित्रयमिदं त्रेता इत्यमरः। गार्हपत्यादीनां कृता प्रजा तया संतुष्टा यद्यतो मम हरौ बुद्धिरभूत्। यस्य सेवां विना द्वापरः संदेहो जन्तूनां तापाय न अपि तु तापायैवेति काकुः। कलिकृतां निबिडापदां चेष्टितं चेष्टा किमच्यते। तास्तु वर्तन्त एव हरिभक्तिं विना॥

हरौ हृदयमायाते, माया ते किं करिष्यति।
यदच्युतध्यानपरा, न पराभवमागताः॥३४॥

हरौ मनः प्राप्ते माया ते किं करिष्यति। अकिंचित्करेत्यर्थः। यतो हरिध्यानपरायणाः पराभवं न गताः॥

भेदा भावेऽपि गोविन्द, त्वद्दया मम जीवनम्।
न वल्ली विद्यते क्वापि स्वातिश्रवणरोहिणी॥३५॥

हे हरे, आवयोरभेदेऽपि तव दया मम जीवने हेतुः। दृष्टान्तमाह- स्वातिश्रवणरोहिणी स्वस्वरूपस्य कारणस्यातिश्रवणेनातिक्रमणेन रोहति जायते, ईदृशी वल्ली कापि न विद्यते। बीजं मुक्त्वा यथा वल्ली न जायते तथा त्वां विनाहं नास्मि। कार्यकारणयोरभेदात्॥

यदा नायाति हृदये तदा मे मृत्युतोऽधिकम्।
आयाते हृदि गोविन्दे मृत्युर्मङ्गलमङ्गलम्॥३६॥

यदा हृदि हरिर्नायाति तदा जीवनमपि मे मृत्युतोऽधिकम्। हरौ हृद्यायाते मृत्युः परममङ्गलम्। मुक्तिहेतुत्वात्॥

सेवे त्वत्पादकमलं कमलाकान्त केवलम्।
विलम्बं तद्विधत्से किं देव हर्तुं महापदम्॥३७॥

हे रमाप्रिय, केवलं त्वत्पादपद्मं सेवे। तर्हि हे देव, मम कष्टं हर्तुं कथं विलम्बं कुरुषे। मम दुःखाहरणे विलम्बो न कार्यः॥

तावल्लोभः प्रभुत्वं भजतु निजभुजस्फूर्जदूर्जातिरेकः
प्रच्छन्नं तावदेनो विरचितमतुलां चित्तपीडां करोतु॥३८॥

रागद्वेषाभिमानानयनिरयभियः स्फूर्तिमायान्तु ताव-
द्यावन्नायाति मायातिमिरदिनकरश्चित्तमध्ये मुरारिः॥३९॥

लोभस्तावदैश्वर्यं करोतु। कीदृशः। निजहस्तयोः स्फूर्जन्वलातिशयो यस्य। प्रच्छन्नं रहः कृतमेनः पापं तावदतुलां मनः पीडां करोतु। क्रोध द्वेषाभिमानानयनरकभियस्तावद्वृद्धिं यान्तु। मायान्धकारसूर्यो हरिर्यावच्चित्ते नायाति। तस्मिन्हृदि आयाते लोभादयः स्वयमेव नङ्क्ष्यन्तीत्यर्थः॥

आयाते हृदये हरौ विगलितं विघ्नैर्गतं पातकैः
कोपेनोपरतं शुचाशु चकितं वीतं विरोधादिभिः।
वित्रस्तं विषयैर्बिभाय बहुधा भेदोऽपि वेदोदितो
दीर्णं दुःखहृदानुदारचरितो मोहः समाप्तिं गतः॥४०॥

हरौ हृद्यायाते विघ्नैरनाशि पापैरपि गतम्। कोपेनोपरतम्। शोकेन आशु शीघ्रं भीतम्। विरोधादिभिर्भ्रष्टम्। विषयैरत्रासि। बहुधा वेदोक्तो भेदो भीतः। दुःखस्य हृदयेन स्फुटितम्। दुष्टचेष्टो मोहो नष्टः॥

मच्चेतोवृत्तिलक्ष्मी रहसि विकसिते हृत्सरोजे सुजाग्र-
द्विष्वक्सेनप्रसङ्गोत्सवमवगणितोपायसर्वान्तरायम्।
संप्राप्य प्रेमपाथोनिधिलहरिपरिव्याकुलाश्लिष्य बाढं
स्वामिव्यामिश्रभावं समलभत सुखं यत्र वाचा विरामः॥४१॥

मन्मनोरूपा लक्ष्मीः रहसि विकसिते हृत्पद्मे सुतरां जाग्रद्यो हरिः तत्सङ्गोत्सवम्। अवगणितोपाया निःसारासर्वेऽन्तराया यत्रेदृशं तं प्राप्य प्रेमसमुद्रोर्मिव्याकुला सती सुखे परमानन्दे गाढमालिङ्ग्य स्वामिना सह व्यामिश्रतां प्राप। ब्रह्मैकतां प्राप्तेत्यर्थः। यत्र वाचामिन्द्रियाणां विरामः। 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इति श्रुतिः। 'मनसैवानुद्रष्टव्यं' 'यन्मनो न मनुते' इति च॥

इदानीं ग्रन्थान्ते मातापित्रोर्नामकथनपूर्वकं स्वनाम निगमयति-

मानी माता पिता विष्णुर्यस्याख्या पुरुषोत्तमः।
विष्णभक्तिलतां चक्रे सतां चक्रे कृताञ्जलिः॥४२॥

इति श्रीपुरुषोत्तमकृतायां विष्णुभक्तिकल्पलतायां चित्तबोधो नामाष्टमः स्तबकः॥

यस्य मानीनाम्नी (माता) विष्णुनामापिता। यस्याभिधानं पुरुषोत्तमः स इमां विष्णुभक्तिकल्पलतां चक्रे कृतवान्। कीदृशः। सतां साधूनां चक्रे समूहे कृतोऽञ्जलिर्येन। साधुनमनकृदित्यर्थः॥

इति श्रीमहीधर विरचिते विष्णुभक्तिकल्पलता विवरणे चित्तबोधो नामाष्टमः स्तबकः॥

समाप्ता विवृतिः श्रुतिबाणरसेन्दुमानवर्षे नभसिस्कन्ददिनेऽसितऽर्कवारे।
महीदासबुधो गिरीशपुर्यां कृतवान्कल्पलताप्रकाशमेतत्।।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः।

प्रथमं परिशिष्टम्

श्लोकानुक्रमणिका

द्वितीयं परिशिष्टम्

छन्दः सूची

मालिनी(ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः)

१/१, १/२, १/३, १/४, १/५, १/६, १/७, १/८, १/९, १/१०, १/११, १/१२, १/१३, १/१४, १/१५, १/१६, १/१७, १/१८, १/१९, १/२० १/२१ १/२२, १/२३, १/२४, १/२५, १/२६, १/२७, १/२८, १/२९, १/३०, १/३१, १/३२, १/३३, १/३४, १/३५, १/३६, १/३७, १/३८, १/३९, ७/३२, ७/३३, ७/३४

वसन्ततिलका(उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौगः)

२/१, ४/१, ४/६, ४/७, ४/९, ४/११, ४/१२, ४/१३, ४/१४, ४/१७, ४/१८, ४/१९, ४/२२, ४/२३, ४/३०, ४/३१, ४/३२, ४/३४, ४/३५, ४/३६, ७/३७

रथोद्धता(रात्परैर्नरलगै रथोद्धता)

२/२,२/३, २/४, २/५, २/६, २/७, २/८, २/९, २/१०, २/११, २/१२, २/१३, २/१४, २/१५, २/१६, २/१७, २/१८, २/१९, २/२० २/२१ २/२२, २/२३, २/२४, २/२५, २/२६, २/२७, २/२८, २/२९, २/३०, २/३१, २/३२, २/३३, २/३४, २/३५, २/३६, २/३७, २/३८, २/३९, २/४०, २/४१, २/४२, २/४३, २/४४, २/४५, २/४६, २/४७, २/४८, २/४९, २/५०

स्रग्धरा छन्द (म्रभ्नैर्यानां त्रयेण,त्रिमुनियतियुता,स्रग्धरा कीर्तितेयम्)

२/५१, ५/१, ५/३५, ६/६, ६/७, ६/११, ६/१९, ६/३२, ६/३३, ६/३४, ६/३५, ७/३, ७/५, ७/९, ७/१०, ७/१२, ७/३०, ७/३१, ८/४, ८/५, ८/२२, ८/३८,८/३९,८/४१

शार्दूलविक्रीडितं(सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्)

३/१, ४/४१, ४/४२, ५/२, ५/३, ५/४, ५/५, ५/६, ५/७, ५/८, ५/९, ५/१०, ५/११, ५/१२, ५/१३, ५/१४, ५/१५, ५/१६, ५/१७, ५/१८, ५/१९, ५/२०, ५/२१, ५/२२, ५/२३, ५/२४, ५/२५, ५/२६, ५/२७, ५/२८, ५/२९, ५/३०, ५/३१, ५/३६, ५/३७, ५/३८, ६/१, ६/२, ६/३, ६/४, ६/५, ६/८, ६/९, ६/१०, ६/१२, ६/१३, ६/१४, ६/१५, ६/१६, ६/१७, ६/१८, ६/२०, ६/२१, ६/२२, ६/२३,६/२४,६/२५,६/२६,६/२७,६/२८,६/२९,६/३०,६/३१,६/३७, ६/३८, ६/३९, ७/१, ७/२, ७/४, ७/६, ७/७, ७/८, ७/११, ७/१३, ७/१४, ७/१५, ७/१६, ७/१७, ७/१८, ७/१९, ७/२०, ७/२१, ७/२२, ७/२३, ७/२४, ७/२५, ७/२६, ७/२७, ७/२८, ७/२९, ७/३५, ७/३६, ८/१, ८/२, ८/३, ८/६, ८/७, ८/८, ८/९, ८/१०, ८/११, ८/१२, ८/१३, ८/१४, ८/१५, ८/१६, ८/१७, ८/१९, ८/२०, ८/२१, ८/२३, ८/२४, ८/२५, ८/२६, ८/२७, ८/२८, ८/२९, ८/३०, ८/३२, ८/३३, ८/४०,

द्रुतविलम्बित (द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ)
३/२, ३/३, ३/४, ३/५, ३/६, ३/७, ३/८, ३/९, ३/१०, ३/११, ३/१२, ३/१३, ३/१४, ३/१५, ३/१६, ३/१७, ३/१८, ३/१९, ३/२०, ३/२१, ३/२२, ३/२३, ३/२४, ३/२५, ३/२६, ३/२७, ३/२८, ३/२९, ३/३०, ३/३१, ३/३२, ३/३३, ३/३४, ३/३५, ३/३६, ३/३७, ३/३८

शिखरिणी- (रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी)
३/३९, ३/४०, ३/४१, ५/३२, ५/३३, ५/३४, ६/३६, ८/३१,

अनुष्टुप्-
३/४२, ८/३४, ८/३५, ८/३६, ८/३७, ८/४२
वियोगिनी-(विषमे ससजा गुरुःसमे,सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी) ४/३७, ४/३८, ४/३९,
इन्द्रवज्रा-(स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः) ४/३, ४/१०, ४/२८,
उपेन्द्रवज्रा-(उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ) ४/२१
उपजाति-(इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा)
४/२, ४/४, ४/५, ४/८, ४/१५, ४/१६, ४/२० ४/२४, ४/२५, ४/२६, ४/२७, ४/२९, ४/३३ ४/४०,

तृतीयं परिशिष्टम्

देवसूची

शक्तिविग्रहसूची

१. कात्यायनी- ३/१

२. गंगा- ५/१५

३.तुलसी-५/१५,७/३५,८/२३

४. दुर्गा- २/१

५. पार्वती- ग्रन्थारम्भ

६. लक्ष्मी- ५/१५

७. सीता- १/७

८. सरस्वती- १/२

९. राधा- १/६

देवविग्रहसूची

१. गणेश- १/१

२. शिव-ग्रन्थारम्भ-३/अन्तिम ४/४, ४/५, ४/१६, ४/१७

विष्णुविग्रहसूची

१. अच्युत- ६/३

२. केशव- ४/१६, १७, ५/८, ६/२६

३. कृष्ण- ५/१, ६/२

४. कृष्ण का बाल रूप- १/अन्तिम, ८/१

५. कृष्ण का मधुररूप- ३/३४

६. गोविन्द- ४/७, ७/१८

७. देवकी पुत्र कृष्ण- ५/१०

८. नन्दपुत्र कृष्ण- ५/९

९. नरसिंहावतार- ४/१०, ४/१६, ४/१७, ६/३८

१०. नारायण- ५/२, ५/११, ७/७, ७/८

११. माधव- ६/९

१२. मुकुन्द- ६/८

१३. मुरारि- ५/५, ७/१

१४. राम- ४/९, ५/३, ६/१३, ६/३७, ६/२२, ८/१०

१५. वामन- ५/६

१६. वाराहावतार- ३/३८

१७. वासुदेव- ४/१६, ४/१७, ६/७

१८.विष्णु-४/१,४/२९,५/३१,६/१,६/३९,७/२०,७/३१,८/२ ८/३, ८/३७

१९. हरि- ४/१६, ४/१७

२०. बलराम- ६/१२





राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

गङ्गानाथझापरिसरः

(गङ्गानाथझा-अनुसन्धानसंस्थानम्)

प्रयागः

२०११